मैला समाज

विकास संवाद फैलोशिप के तहत
वाल्मिकी – हेला समुदाय के
सामाजिक बहिष्कार एवं भेदभाव
पर अध्ययन

दयाशंकर मिश्र

पुराने ऐशबाग थाने के पीछे
मकान नं. 2537, जगन्नाथ कालोनी, ऐषबाग भोपाल
मोबाइल:09977700221, निवासः 0755–2750341

आमुख

हमारा संविधान, इस देश का कानून कागजों पर भले ही कुछ कहते दिखे, लेकिन इसके बाद भी हमारे देश में आज भी करोड़ों ऐसे लोग हैं, जो अपने मौलिक अधिकारों से वंचित, सामान्य जीवन जीने का अधिकार नहीं रखते हैं। मैला ढोने जैसी घृणित कुप्रथाएं आज भी जिंदा हैं। जंगों के जमाने में हारे हुए लोग गुलाम बनाए जाते थे, जिनकी जिंदगी तय करने का हक विजेता राजा को होता था। वक्त बदल गया लेकिन उन हारे हुए लोगों की कौम आज भी वैसी ही जिंदगी के लिए विवश है। अंतर इतना ही है कि लोकतंत्र में ऐसी भूमिका में वह बहुसंख्यक वर्ग होता है, जिसकी सरकार हो, जिसके पास वोट हों। जिसके पास वोट नहीं होते, उसकी स्थिति लोकतंत्र में किसी पराजित सैनिक से कम नहीं होती। सदियों पहले इस देश में एक सेना किसी जंग में हार गई थी और ऐसा माना जाता है कि विजित सेना ने उन्हें सजा सुनाई कि वे जीते हुए मनुष्यों का मैला साफ करें। इसके बाद से मैला ढोने की प्रथा का आरंभ हुआ। सदियां बीत गईं लेकिन यह प्रथा मप्र समेत देश के 13 से अधिक राज्यों में बदस्तूर जारी है। इस पर कार्रवाई के लिए अब तक अनेक समितियों का गठन हुआ और अनेक रिपोर्ट्स भी फाइल की गईं, लेकिन ग्रासरूट पर कुछ हुआ नहीं।

यह महज संख्याओं का मामला नहीं है। चूंकि हम एक लोकतांत्रिक गणराज्य में निवास करते हैं, इसलिए हम संख्याओं और आंकड़ों से खेलने के आदी हो चुके हैं। इस फैलोशिप पर अध्ययन के दौरान मैं बड़ी संख्या में लोगों से मिला, उनसे विचार–विमर्श किया। लेकिन इस दौरान ज्यादातर लोगों की सोच यही थी कि अब बहुत थोड़े से लोग इस काम को कर रहे हैं, अतः मामला बहुत गंभीर नहीं है। यही है आंकड़ों की बाजीगरी। हमारा समाज हर चीज को आंकड़ों से क्यों तौलता रहता है। यदि मप्र में मुट्ठीभर लोग भी यह काम करते हैं तो इस बात से अंतर पड़ता है, लोगों के दिलो–दिमाग पर अंतर पड़ना ही चाहिए। मप्र के उज्जैन की हैलावाड़ी, तराना का इलाका, देवास, नीमच और मंदसौर, शाजापुर मप्र के वे प्रमुख स्थान हैं, जहां पर मैला ढोने की कुप्रथा अब तक के तमाम प्रयासों के बाद भी समाप्त नहीं की जा सकी है। फैलोशिप पर अध्ययन के दौरान मैंने वाल्मिकियों, हेला समुदाय के लोगों के साथ निरंतर संवाद के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया कि आखिर उनके बहिष्कृत होने के पीछे क्या कारण हैं। एक ओर हम एक गणतंत्र के रूप में मजबूत हो रहे हैं, तो दूसरी ओर हमारे सामाजिक ढांचे में सहिष्णुता की जगह कट्टरता का विस्तार होता जा रहा है। इस अध्ययन के माध्यम से मैंने वाल्मिकी और हेला दोनों समुदायों के सामाजिक, आर्थिक अध्ययन के साथ ही खुद उनकी विचार प्रक्रिया और दूसरे समाजों के साथ अंर्तसंबंधों को समझने का प्रयास किया है।

मैं फैलोशिप के दौरान मिले प्रत्येक सहयोग के लिए सदैव प्रस्तुत रहने वाले मो. आसिफ का विशेष आभारी रहूंगा। जो हमेशा मेरी मदद के लिए तत्पर रहे। इसके साथ ही महू की शबनम से भी मुझे समय–समय पर सहयोग मिला। आप दोनों ने ही हेला और वाल्मिकी समुदायों की समस्याओं को समझने में मेरी भरपूर मदद की। शबनम ने शोध कार्य के लिए आवश्यक संदर्भ सामग्री जुटाने में बहुत अधिक मदद की, जिसके लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूंगा। मानवीय सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध श्री सचिन जैन ने इस संपूर्ण अध्ययन के दौरान एक गाइड की भूमिका निभाई, उनके आत्मीय सहयोग के लिए भी साधुवाद।

शोध संक्षेप

विकास संवाद फैलोशिप के दौरान सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार पर काम करने के दौरान मेरे अनुभव और शोध के मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार से हैं, जो हमारे सामाजिक ताने–बाने की न केवल पोल खोलते हैं, बल्कि सामाजिक हकीकत और विभिन्न धर्मों में व्यापत आपराधिक, अमानवीयता को भी बखूबी बयां करते हैं–

1. जब रिसर्च के लिए मैं दलित बस्तियों में जाता था तो वहां के लोग कहते कि आपके स्पर्श से हमें ही उल्टा पाप लगता है, जबकि सवर्णों का विरोध इस बात को लेकर था कि क्यों भंगियों के बीच अपने ब्राहमणत्व की धज्जियां उड़ा रहे हो भाई। सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का है कि ऐसे लोग जो कथिततौर पर मानवतावादी रिपोर्टिंग और पत्रकारिता की बात करते हैं, उनको इस तरह की कुप्रथाओं पर अचरज नहीं होता। वे इसे हमारे सामाजिक प्रथाओं की आवश्यक बुराई करार देते हैं।

2. मुझे एक से अधिक अवसरों पर ऐसी बातें सुनने को मिलीं कि इस इस तरह के अध्ययन वास्तव में दलितों को झांसा देने के लिए किए जाते हैं, सवर्ण जाति का हूं। मैं कथित तौर अस्पृश्य जातियों के बीच हूं इस बात का विरोध मुझे दलितों के साथ ही सर्वणों के बीच भी झेलना पड़ा।

3. केवल दो वक्त की रोटियों के लिए भरी बरसात में मैले की टोकरी का सारा मैला सर पर उठाना यह एक ऐसी विवशता है, जो किसी भी संवेदनशील मनुष्य को परेशान कर सकती है। लेकिन कैसा हमारा शिक्षित, सहिष्णु समाज और कैसे कथित तौर पर पढ़े लिखे लोग और नकारा सरकारी तंत्र और विशेषकर कलेक्टरों की जमात है, जिनकी आंखों को कुछ नहीं दिखाई देता।

4. एक कलेक्टर ने कहा कि हम बरसात में पीतल की मटकी इनको उपलब्ध करवाएंगे, ताकि मैला ढोने में परेशानी नहीं हो।

5. इसी तरह से एक पूर्व मुख्यमंत्री जो दलितों की मसीहा हैं, खुद भी पिछले वर्ग से हैं, कहा है कि मैला ढोने के लिए नई गाड़ियों की व्यवस्था करेंगे। इन मासूमों को नहीं मालूम था कि मैला ढोने की प्रथा कानूनी तौर पर प्रतिबंधित है। ऐसे समाज में और कब तक मैला ढोने का काम बंद हो गा कहना मुश्किल है। और हो भी गया तो उनको मुख्यधारा में आने में कम से कम एक से अधिक सदी का वक्त लगेगा।

6. जाति हमारे देश की सबसे बड़ी सच्चाई है। यह एक ऐसा बोध है, जिससे देश का आदमी कभी भी उबर नहीं पाता। हाल ही में मुंबई में मेरी मुलाकात फ्रांस से आए एक इंजीनियर से हुई और उसे यह समझाने में कि जाति क्या होती है, लंबा वक्त लगा। लेकिन अंततः उसे बात समझ आ गई। अपने देश में करोड़ों पढ़े लिखे सवर्ण–दलित दोनों हैं, लेकिन इस पूरी रिसर्च के दौरान मुझे मप्र में एक सरकारी अफसर, नेता और इस संदर्भ में पढ़ा–लिखा कहा जा सकने वाला व्यक्ति नहीं मिला जो जातिगत धारणाओं से इतर मानवीय सरोकारों की पैरवी करे।

7. इन समुदायों के भीतर खुद भी एक ऐसी हीनग्रंथि है, जो उनको आगे बढ़ने से रोकती है। यह संभवतः सदियों से दलितों के दमन का सामाजिक परिणाम है कि उनके भीतर सवर्णों से बेहतर हो सकने का भाव कहीं खो गया है। इसका सवर्ण भरपूर दोहन कर रहे हैं।

8. पुरुषों और महिलाओं के बीच एक ही तरह का यूनिवर्सल रिश्ता है। पुरुष स्त्रियों को किसी भी तरह से अपने समान दर्जा देने को तैयार नहीं हैं और वह उसे अपने अधिकार क्षेत्र के सीमाओं से बाहर निकलने, शिक्षा जैसे सहज मानवीय अधिकार से महज इसलिए वंचित रखना चाहता है ताकि कहीं उसे अपने अधिकारों के बारे में पता नहीं लग जाए। मैला ढोने का काम करने को विवश समाजों में भी स्त्री चेतना, उसकी अभिव्यक्ति पर पुरूषों का ही बोलबाला है। दूसरों का मैला ढोए औरत और मर्द दूसरी औरत के चक्कर में फिरे, दिनभर चिलम फूंकता रहे। उसके लिए अधिक पत्नी का मतलब है अधिक काम और आय का साधन। इसकी पुष्टि हेला समाज में बहुपत्नी प्रथा के रूप में मिलती है, चूंकि इस्लाम में एक से अधिक पत्नियों को मान्यता दी गई है, इसलिए इसके विरोध में कहीं से कोई स्वर नहीं उभरता है।

9. गांवों विशेषकर कस्बों में छूआछूत में इतना ही अंतर आया है कि जो व्यक्ति किसी न किसी तरह से मुख्यधारा में शामिल हो गया है, उसे कुछ हद तक चाय की दुकान में चाय पीने का हक है और अपनी बात रखने का हक है। इसके अलावा वह जो गरीबी के मकडजाल से मुक्त नहीं हो सके हैं, उनकी स्थिति अभी भी सामंतवादी दिनों जैसी ही है।

10. मैला ढोने वाले वाल्मिकियों और हेला समाज दोनों की स्थिति अपने ही समुदाय यानि दलितों और पिछड़ों के बीच बहिष्कार की है। इस्लाम में अस्पृश्यता की स्थिति को देखना दुखद अनुभव है, क्योंकि मनुष्यों के बीच आपसी समानता पर सबसे अधिक बल देने वाले धर्मों में से एक यह धर्म है।

11. मस्जिदों में हेलाओं के लिए अलग कतार होती है। ईद पर उनके साथ खुशियां नहीं बाटी जाती। इसी से तंग आकर उज्जैन की हैलावाड़ी में हेलाओं ने एक अलग मस्जिद ही बना ली है। यह मस्जिद भेदभाव की समस्या का हल तो नहीं है, क्योंकि यह समुदाय को जोड़ने की जगह उसे स्वतः ही बहिष्कृत कर देता है।

12. मायावती और कांशीराम के सत्ता में आने से दलित चेतना में खासी सुधार हुआ है। इस बात में कोई दो संशय नहीं होना चाहिए कि दलितों, पिछड़ों के आत्मबल में जो कुछ सुधार गत दो दशकों में दर्ज किया गया है वह मुख्यतः बहुजन समाज पार्टी और उसके जैसे अन्य नेताओं के सत्ता में रहने से हुआ है। मप्र में बसपा का असर भले ही अभी भी कम हो लेकिन अंदर ही अंदर एक तरह की कसमसाहट तो है ही। माया एंड कंपनी को श्रेय देने के दो कारण हैं।

13. पहला तो यह कि दलितों का एक वोट बैंक बना। जिसने उनको एक किस्म की सामुदायिक एकता प्रदान की। दलितों के भीतर की सामाजिक चेतना के विस्तार से सबसे बड़ा लाभ यही हुआ कि उनको यह विश्वास हुआ कि उनके भीतर की एक दलित लड़की देश के सबसे बड़े राज्यों में से एक की मुखिया बन सकती है। मायावती के एक नहीं अनेक बार सीएम बनने से दलितों में उनके एकदिन आगे हो जाने की संभावना को बल मिला।

14. दूसरा बड़ा काम जो माया के बार–बार सत्ता में आने से हुआ वह यह कि ब्राहमण अब दलितों के साथ सामुदायिक और सार्वजनिक स्थानों पर अब बेहतर तरीके से पेश आने लगे दिखते हैं।

15. मेरे लिए यह पहला अवसर था जब मैं मेला ढोने वालों के इतने जीवंत रूप में देख रहा था। मेरे भीतर कोई जातिगत हिचक तो नहीं थी, जो मुझे उन समुदायों के साथ इस

बैठने, भोजन करने से रोकती, लेकिन जिस गंदगी, बजबजाहट भरे वातावरण वे रहने को विवश हैं, वहां पर उनके साथ भोजन और चाय–पान के प्रस्तावों को स्वीकारते हुए अंदर से मैं कांप जाता था। हालांकि मैंने इन प्रस्तावों को किसी भी कीमत पर अस्वीकार नहीं करने का पक्का इरादा कर लिया था, क्योंकि इससे मेरी समानता और जातिगत बुराइयों पर कही गई बातों का उल्टा असर होने का खतरा था।इन समुदायों के लोग ऐसा होने पर किसी भी तरह से संवाद के दौरान सरल नहीं हो पाते।

16. देश बदल रहा है, वक्त बदल रहा है। लेकिन जातियों के लेकर आने वाला बदलाव बेहद धीमी गति से आ रहा है। जातियों के नाम पर समाज इस तरह से बंटा हुआ है कि गरीबी की मार खाते किसानों की बमुश्किल बची जमा पूंजी मुकदमों के लिए तहसील जाने–आने में ही खर्च हो रही है।

17. रोटी–बेटी के व्यवहार की बात तो दूर की कौड़ी है। अभी भी आते जाते स्पर्श हो जाने पर सवर्णों की गालियां, अपनी औकात भूलने के ताने दिए जाते हैं। इस हाल में इन वर्गों के बच्चों की शिक्षा किस तरह से प्रभावित हो रही है, यह समझ पाना कतई मुश्किल नहीं है।

18. वाल्मिकियों और हेलाओं समेत दूसरी अछूत माने जाने वाली जातियों की लड़कियों के लिए स्कूल से आगे का सफर बेहद मुश्किल होता है, क्योंकि उन्हें न केवल सवर्ण जातियों की गंदी गालियों का सामना करना पड़ता है, बल्कि केवल इसी वजह से उनको गांवों में अनेक प्रकार के अघोषित बहिष्कारों का भी सामना करना पड़ सकता है।

1. पृष्ठभूमि और परिस्थिति विश्लेषण

1.1 प्रस्तावना

हिंदुओं को चाहिए थे वेद,
इसलिए उन्होंने व्यास को बुलाया, जो सवर्ण नहीं थे।
हिंदुओं को चाहिए था महाकाव्य,
इसलिए उन्होंने वाल्मिकी को बुलाया
जो खुद अछूत थे।
हिंदुओं को चाहिए था, एक संविधान
और उन्होंने मुझे बुला भेजा।1

बाबा साहब अंबेडकर की यह कविता दलितों के साथ ही उन तमाम मनुष्यों के आत्मविश्वास और आत्मबल को बढ़ाने के लिए आवश्यक है, जो जातिगत कारणों से, मनुवादी व्यवस्थाओं के कारण न केवल उच्च वर्गों द्वारा हाशिए पर डाल दिए गए हैं, बल्कि खुद भी हीन भावना का शिकार हो गए हैं। जन्म के पहले दिन से लेकर शिक्षित, युवा होने तक इतने अवसरों पर उनका अनादर किया जाता है कि वे स्वयं को उन्हीं कार्यों के योग्य मानते हैं, जो समाज के उच्च वर्ग द्वारा उन पर थोपे गए हैं। जैसे मैला ढोना, घरों, सड़कों की सफाई करना। कथित उच्च कुलीन जातियों की सेवा के लिए तमाम कार्य करना।

सामाजिक बहिष्कार का एक बेहद प्रचलित सामान्य अर्थ यह बताया जाता है कि वे लोग जोकि किन्हीं कारणों से समाज की सुविधाओं एवं अपने मूल अधिकारों से वंचित हैं, बहिष्कृत हैं। बहिष्कार को इस तरह से परिभाषित किया जाता है कि बहिष्कार यानि जानबूझकर समाज के समुदाय विशेष को उनके हितों से वंचित रखना। बहिष्कार के अनेक रूप होते हैं, अनेक माध्यम होते हैं। लेकिन जब बात **वाल्मिकी और हेला जैसे** समाजों की हो तो बहिष्कार का संपूर्ण शब्दकोष ही बदल जाता है। मोटे तौर पर कहा जाए तो समाज के बहुसंख्यकों की नजर में यह समुदाय मनुष्यों की श्रेणी में आता ही नहीं है। आज भी कथित रूप से अपने को प्रगतिवादी कहने वाले कितने ऐसे लोग हैं, जो इस समुदाय के व्यक्तियों के साथ सहज रह पाते हैं। मंदसौर,देवास जैसे जिलों में आज भी इनके लिए चाय की दुकान में अलग से कप रखे जाते हैं। नीमच में नाई को इनके बाल काटने पर ऐतराज है, तो उज्जैन के तराना में बच्चों को पाठशाला में पहले सफाई करनी होती है।

इसलिए वाल्मिकी और हेला समाज के सामाजिक बहिष्कार को समझने के लिए अन्य समाजों को, उनके साथ हो रहे व्यवहारों को अधिक सूक्ष्म दृष्टि से परखने की आवश्यकता है। उन उदाहरणों के निहितार्थ समझने का प्रयास करना होगा, जो स्पष्टतौर पर यह बताते हैं कि समाज मैला ढोने वालों के प्रति न केवल अमानवीय दृष्टि रखता है, बल्कि उसे कथित रूप से उसकी सेवा के लिए जन्म लेने वालों का सामाजिक स्तर बढ़ते देखना बिल्कुल नहीं सुहाता। देवास जिले के बरोठा की सुमित्रा बाई की कहानी सामाजिक बहिष्कार की किसी भी परिभाषा पर भारी है, तो दूसरी ओर नीमच की रीना वाल्मिकी का पढ़ाई छोड़ देना भले ही मीडिया की सुर्खियां नहीं बटोर सका हो, लेकिन इसमें समाज के दबंगों का मनुष्यों को ही मनुष्य जाति से बाहर कर देने का ऐसा दर्द छुपा है, जो हमारे तमाम संवैधानिक प्रावधानों की धज्जियां उड़ाने के लिए पर्याप्त है।

सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार भारतीय समाज में दो रूपों में अभिव्यक्त होता है। एक है– जाति आधारित, तो दूसरा– कर्म आधारित। जाति की अवधारणा हिंदुओं की धर्मसंहिता कही जाने वाली मनुसंहिता की देन है और इसी आधार पर कर्म आधारित समाज का विकास हुआ है। जाति की समझ और उसके बुनियादी सिद्धांतों का पालन करने की कला भारतियों को विरासत में मिली हुई है। उदाहरण के लिए हमारे देश में ब्राह्मणों के पांव छूने, उनको पवित्र मानने, श्रेष्ठ मानने का विचार बेहद सामान्य है। यह विचार इस हद तक है कि जो समाज

के पदसोपान में न्यूनतम पायदान पर हैं, उनके दिलो–दिमाग में सदियों से अपने को निम्नतम मानने का भाव है। पिछले दो दशकों में जबसे भारतीय राजनीति में जातिगत ध्रुवीकरण तेज हुआ,तब से यह बात बहुत आसानी से महसूस की जा सकती है कि दलितों की चेतना का भी आंशिक ही सही, लेकिन विस्तार तो हुआ ही है। इस अध्ययन में इस तरह के तमाम ऐसे अनुभवों को शामिल किया गया है, जो कि यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि समाज का सवर्ण तबका किसी भी आधार पर समान सामाजिक मूल्यों को व्यवस्थित नहीं होने देना चाहता है। सामाजिक बहिष्कार जैसी बात आखिर आती कहां से है। यह है क्या। इस बारे में सामाजिक सरोकारों से गहरी संबंद्धता रखने वाली मेधा पाटकर से लेकर ओमप्रकाश वाल्मिकी और हर्ष मंदर, निखिल डे जैसे प्रबुद्धजनों के साथ विमर्श और अनुभव बांटने के बाद यह बात सामने आई कि भारतीय समाज विशेषकर ग्रामीण समाज अपनी दकियानूसी सामाजिक व्यवस्थाओं के मकड़जाल में बुरी तरह से उलझा हुआ है। आजादी के बाद भी हम साक्षर तो हुए हैं, लेकिन शिक्षित होने में हमें अभी वक्त लगेगा। हमारी वर्तमान शिक्षा ने हमें महज क्लर्क बनाया है, इससे अधिक कुछ नहीं। हमारी अपनी ही मिट्टी की पैदाइश में करोड़ों भाई–बहन नारकीय जीवन जीने को विवश हैं और हम उफ् तक नहीं करते! इससे भी अधिक जो बात हमें निराश करती है, वह यह है कि मीडिया, जिससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे संवेदनशील मुद्दों को सामने लाएगा, उसको पता नहीं है कि वास्तव में ऐसी कोई प्रथा आज भी व्याप्त है। अगर जानकारी है भी तो मैला ढोने वाले समुदायों के प्रति कोई संवेदनशीलता कम से कम मुझे तो नजर नहीं आई। एक दो अपवादों को छोड़कर अधिकांश मीडियाकर्मियों के लिए ऐसे मुद्दे अपमार्केट नहीं हैं।

श्री ओमप्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा जूठन सामाजिक व्यवस्थाओं को उधेड़ने वाला बेहद जरूरी दस्तावेज है। जो यह बताता है कि किस तरह से लाखों प्रतिभाशाली बच्चे जो कि विभिन्न दलित समुदायों से आते हैं ,शिक्षा जैसे बुनियादी अधिकार से वंचित कर दिए जाते हैं। बहुत पुरानी बात नहीं है जबकि हमारे स्कूलों में मास्टरजी बच्चों को बुरी तरह से पीटा करते थे। अगर कोई शोधार्थी इस विषय पर शोध करे कि ग्रामीण स्कूलों में अक्सर पिटने वाले बच्चों की जातियां क्या हैं, तो सामाजिक भेदभाव का एक नया रूप हमारे सामने आएगा। श्री वाल्मिकी की जूठन एक दलित बच्चे के आत्मविश्वास को रौंदने का पूरी ईमानदारी से पर्दाफाश करती है। आज भी गांव में चर्मकार समुदाय, वाल्मिकियों के बच्चों को उनके नाम से नहीं बल्कि उनके काम से बुलाया जाता है। चमड़ा बनाने वालों की औलाद,सुअर पालने वालों की औलाद जैसे संबोधन बेहद आम हैं।

वाल्मिकी–हेला समाज पर थोपे गए काम

1. परंपरागत रूप से मैला ढोने का काम। पक्के षौचालय बनने पर सफाई का काम
2. गांव में हुई मौत की चिट्ठी लेकर उसके रिष्तेदारों के यहां जाना।
3. मरे हुए कुत्ते, बिल्लयों को गांव से बाहर फेंकना।
4. सफाई के काम की अनिवार्य जिम्मेदारी। जिससे इंकार करने पर जमकर पीटा जाता है। सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है।

भेदभाव का आलम

1. दूसरी जाति के लोग साथ बैठकर भोजन नहीं करते।
2. स्कूलों में इनके बच्चे सबसे पीछे बैठते हैं। स्कूल की सफाई भी करते हैं।
3. अनेक स्थानों पर मध्यान्ह भोजन के लिए घर से बर्तन लाना जरूरी।

1.2 सरकार की ओर से किए गए प्रयास

पुनर्वास की प्रतिष्ठा योजना

सफाई कामगारों को सफाई कार्य से मुक्ति दिलाने व सिर पर मैला ढोने जैसी कलंकित व असहनीय कुप्रथा को भारत से समाप्त करने के उद्देष्य से सरकार द्वारा योजनाएं चलाई जा रही हैं। चूंकि हेला बिरादरी भी सफाई कार्य करती है, अतः इन योजनाओं में उसका भी हिस्सा होता है।प्रतिष्ठा योजना का उद्देष्य सफाईकामगारों को सफाई कार्य से छुटकारा दिलाने अर्थात् व्यावसायिक गतिषीलता को प्राप्त करने व समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाना है। ''यह पुनर्वास सफाई कामगारों और उन पर निर्भर व्यक्तियों की सफाई कार्य से मुक्ति एवं पुनर्वास हेतु चलाई जा रही राष्ट्रीय योजना का एक हिस्सा है। यह योजना मध्यप्रदेष सरकार द्वारा सफाई कामगारों के पुनर्वास हेतु सन् 1992–93 में शुरू की गई थी। इस योजना के अंतर्गत सफाई कामगारों को जिनका सर्वेक्षण हो चुका है तथा जिले का मूल निवासी है,को स्वयं का व्यवसाय स्थापित करने हेतु विभिन्न बैंकों के माध्यम से रूपये 50,000 (पचास हजार) तक का बैंक ऋण प्रदान किया जाता है। जिसके विरुद्ध अंत्यावसायी समिति द्वारा 50 प्रतिषत अनुदान अधिकतम रूपये 10,000 (दस हजार) एवं 15 प्रतिषत मार्जिन मनी अधिकतम 7,500 (सात हजार पॉच सौ) प्रदान किये जाते हैं। अनुदान राषि के अतिरिक्त राषि पर साधारण बैंक ब्याज दर 4 से 6 प्रतिषत तक होती है।''

फिर भी जारी अमानवीय प्रथा

मार्क्सवादी सांसद मोहम्मद सलीम की अध्यक्षता वाली शहरी आवास व गरीबी उपशमन मंत्रालय से जुड़ी शहरी विकास संबंधी संसद की स्थायी समिति ने 06–07 की अपनी रिपोर्ट में कहा है कि 1994 में संसद ने हाथ से सफाई करने वालों के लिए नियोजन और शुष्क शौचालयों का सन्निर्माण प्रतिषेध अधिनियम पास किया था।उसके अनुसार न तो कोई व्यक्ति सिर पर मैला ढोने का काम करेगा और न ही शुष्क शौचालय का रखरखाव करेगा। इस अधिनियम के बावजूद समिति यह देखकर दुखी है कि अधिनियम के लागू होने के एक दशक से अधिक समय बाद भी देश के कई भागों में सिर पर मैला ढोने की सबसे शर्मनाक, अमानवीय व अपमानजनक प्रथा जारी है। समिति को जानकारी दी गई कि अभी तक 28 राज्यों में से केवल 13 राज्य और सात संघ शासित प्रदेश ऐसे हैं जिन्होंने अपने को इस प्रथा से मुक्त घोषित किया है। इनमें अरुणाचल ,केरल, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड,सिक्किम, झारखंड, पंजाब,हरियाणा, मध्यप्रदेश, गोवा, गुजरात और त्रिपुरा शामिल है जबकि आंध्र प्रदेश, मेघालय अैर राजस्थान इस साल इस आशय की घोषणा करने वाले हैं।

समिति ने इस बात पर नाराजगी जताई है कि इतने साल बीत जाने के बाद भी आईएलसीएस योजना का कार्यक्षेत्र तथा प्रभाव इस प्रथा का उन्मूलन करने में असमर्थ रहा है। कई राज्य इस योजना के लिए आवश्यक उत्साह पैदा करने में असमर्थ रहे हैं जबकि इस योजना के लिए सुझाए गए संसोधनों के मुताबिक 31मार्च 2007 तक पूरे देश को सिर पर मैला ढोने वाले लोंगों से मुक्त घोषित कर दिया जाना था।

अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत लोगों के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति

केंद्र सरकार अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत लोगों के बच्चों के लिए मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति योजना लागू कर रही है। सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री सुब्बुलक्ष्मी जगदीशन ने लोक सभा में इस वर्ष एक प्रश्न के लिखित उत्तर में यह जानकारी दी। उन्होंने बताया कि इस योजना के तहत वर्ष 2006–07 के दौरान राज्यों और संघ क्षेत्रों को 16 करोड़ रुपए के आवंटन की तुलना में 20–25 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई। वर्ष के दौरान संभावित लाभार्थियों की संख्या 6,54,902 थी। राज्य मंत्री ने बताया कि इस योजना के तहत छात्रवृत्ति के पात्र सभी छात्रों को कवरेज प्रदान करने का प्रावधान है।

2. समुदाय

अ. हेला समुदाय

हेला समाज के बारे में ऐसी लोकमान्यता है कि प्राचीन समय में किसी राजा ने अपने आदेश की अवहेलना पर एक बिरादरी को मैला ढोने की सजा सुनाई थी। इस बिरादरी के मुखिया का नाम इब्राहिम हेला था। ऐसा कहा जाता है कि तभी से इनके वंशजों को हेला कहा गया। इनके नाम पर संसार का सबसे घृणित काम लिख दिया गया। वैसे इस समुदाय के मप्र में होने का इतिहास नहीं है और कहा जाता है कि यह लोग उप्र से पलायन करके यहां पहुंचे। ;द शेड्यूल्ड कास्ट्स, के एस सिंह पेज 592 पेज। जिसके बाद यह कथित आदेश एक अघोषित नियम बन गया। जिसके खिलाफ आवाज बुलंद करने का साहस न तो इस समुदाय में मुखर हो सका और न ही इनको कोई ऐसा नेतृत्व मिला, जो इनके लिए लड़ सके। यहां यह विडंबना भी उल्लेखनीय है कि इस समुदाय में नई वधुओं को ससुराल पहुंचते ही सास से मैला ढोने की जिम्मेवारी लेनी ही होती है और परंपरागत रूप से सौंपे जाने वाले इस काम को शी जागीर कहा जाता है। यह कैसी जागीर है, जिसमें बहू के पास मैला ढोने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं है। कुछ समय पहले भोपाल में हुए एक सम्मेलन में ऐसी अनेक महिलाओं की आंखें यह अनुभव बताते हुए भीग गईं कि किस तरह सास और पति ने उनको मैला ढोने के लिए मजबूर किया। सास, पति ऐसा करने के लिए मजबूर भी हैं, क्योंकि यही तो उनके लिए आजीविका और समाज में बने रहने का एकमात्र साधन है।

आज अनेक स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों से तस्वीर बदलनी शुरू जरूर हो गई है, लेकिन फिर भी इस रात की सुबह इतनी जल्दी नजर नहीं आ रही है। उक्त दोनों ही समुदायों के लिए गांव में उस समय जीना मुश्किल हो जाता है, जब वह मैला ढोने से इंकार कर दें, क्योंकि यह लोग अपनी आर्थिक जरूरतों के लिए गांव के उन साहूकारों पर ही निर्भर हैं, जिनके घरों का मैला ढोने से वह इंकार करते हैं। ऐसे में यह कैसे संभव है कि संपन्न लोग काम छोड़ने के बाद उनकी राह में मुश्किलें पैदा करना कम कर देंगे।

दूसरी ओर हेला समुदाय की बात करें तो हेलाओं को मुसलमान होते हुए भी इस्लाम के बराबर और एक नजर से देखने के सिद्धांत के अनुरूप सामाजिक व्यवहार नहीं मिला। हलांकि इस्लाम अपने अनुयायियों में बुनियादी समानता पर बहुत जोर देता है। परंतु इस्लामी समानता भारत के संदर्भ में व्यवहारिक सिद्ध नहीं हो सकी। मुस्लिम समाज में भी कुछ जातियां ऐसी हैं, जिन्हें सामाजिक दृष्टि से हीन तथा अछूत माना जाता है, परंतु मुस्लिम समाज में इस अस्पृष्यता व हीनता का आधार धार्मिक न होकर केवल सामाजिक है और वह हिंदू समुदाय के समान कठोर भी नहीं है। वैसे सामान्य रूप से उच्च जातियां अर्थात अषराफ जातियां इन निम्न जातियों के संपर्क से बचती हैं। सैद्धांतिक रूप से तो इन जातियों के मस्जिद में प्रवेष करने पर निषेध नहीं है, परन्तु व्यवहारिक जीवन में उन्हें मस्जिदों में प्रवेश नहीं दिया जाता।

अन्य संदर्भ

दलित अध्ययन पर लंबे समय से काम करने वाले प्रो. श्यामलाल के अनुसार ''हेला'' का अर्थ है– चिल्लाना और उन्हें चिल्लाना इसलिए कहा जाता था, क्योंकि रास्ते पर चलते समय अपनी पहचान बताने के लिए उन्हें चिल्लाना पड़ता था। एक अन्य सिद्धांत के अनुसार हेला नाम हिलना शब्द से भी बना हुआ है। जिसका अर्थ है–घरेलू होना (पालतू होना)। कुछ अन्य जानकारों के अनुसार हेला शब्द टोकरी का भार के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और कहीं–कहीं इस शब्द को ''मल'' के अभिप्राय से भी प्रयुक्त किया जाता है।

भारत में मुस्लिम समुदाय को 2 वर्गों में बांटा गया है– अषराफ और अजराल।

🕊 अशराफ

इसमें चार बड़ी सगोत्र जातियां (बिरादरियां) हैं, जो अपने को पश्चिम या मध्य एषिया के मूल का होने का दावा करते हैं। इसमें 4 मुख्य बिरादरियां हैं –

1. सैय्यद
2. शेख
3. मुगल,
4. पठान, जो क्रम के अनुसार सामाजिक पदसोपान रखते हैं।

🕊 अजराल

यह बिरादरी भारतीय मुस्लिम समाज में निम्नतर दर्जे का माना जाती है। अजराल पेषे और सामाजिक दर्जे में हिंदुओं की शूद्र और अवर्ण अछूत जातियों के समतुल्य है। हेला बिरादरी भी इसी अजराल वर्ग के अंतर्गत आती है।

''ये देष के मध्य पूर्व क्षेत्र से उनके पूर्वज राजा हफीज रहमान अली के सैनिक थे, भारतवर्ष में आए। दूसरी ओर यह कहा जाता है कि वर्तमान के हेला रूहेल पठान की औलाद थी, जो कि बहुत पहले भारत में आ चुके थे। एक किवदंती है कि एक राजा की हुक्मनामी के हर्जाने के रूप में इस बिरादरी को सफाई का काम सौंपा गया। इस बिरादरी के मुखिया का नाम **इब्राहिम रूहेला** था। इस नाम से ''इब्राहिम और रू'' लुप्त होकर शेष हेला प्रचलित हुआ और इस प्रकार इस बिरादरी का नाम **हेला** पड़ा।

के एस सिंह ने अपनी किताब शेड्यूल कस्टम में लिखा है कि **''1981 की जनगणना के अनुसार मप्र में इनकी जनसंख्या 2,22,039 है। जिसमें भंगी भी शामिल है।** इस बिरादरी के ज्यादातर लोग उप्र से पलायन कर मप्र में आए हैं। इस तथ्य की पुष्टि निम्न उद्धरण से भी होती है कि ये लोग यहीं से म.प्र. के धार, उज्जैन, मंदसौर और भोपाल के जिलों में आए हैं''। इस बिरादरी के लोग घर पर छत्तीसगढ़ी भाषा व बिरादरी में हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं। हेला भी अन्य जातियों की तरह अपनी ही जाति में शादी करते हैं और वयस्क विवाह को प्रोत्साहन देते हैं। उनके यहां एक पत्नी तथा एक से अधिक पत्नियां रखने का भी मुस्लिम रिवाज है। सगोत्र व सामूहिक विवाह भी विद्यमान है। मेहर व दहेज प्रथा भी विद्यमान है। ये स्थानीय प्रथा का भी अनुसरण करते हैं। तलाक की प्रथा भी इनकी जाति में विद्यमान है, लेकिन केवल वर ही इस कार्य को कर सकता है। विधवा–विवाह तथा पुर्नविवाह भी किया जाता है। शरीयत के सिद्धांत के अनुसार महिलाओं में पर्दे की प्रथा का भी प्रचलन है। इस बिरादरी में महिलाएं गृहकार्य के साथ–साथ सफाई का कार्य भी करती है।

हेला मुस्लिम पूरी तरह से इस्लाम में यकीन रखते हैं व रमजान, ईद, मोहर्रम आदि सभी त्योहार मनाते हैं। इस बिरादरी की एक जाति पंचायत भी है, जो समाज से संबंधित सभी कार्यों को करती है व लड़ाई–झगड़े होने पर सर्व सम्मति से उनका निपटारा भी करती है। इस बिरादरी के अधिकांष लोग सफाई कार्य में लगे हुए हैं। जिनमें से कुछ नगरपालिका व कुछ जागीरदारी प्रथा में सफाई का काम करते हैं। अधिकांष महिलाएँ जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत सफाई का काम करती हैं। आजादी से पहले पुरुष बाजा, नगाड़े बजाना आदि कार्य भी करते थे। किंतु वर्तमान में इस बिरादरी के पुरुष लघु उद्योगों व्यवसायों, सरकारी कार्यालयों में नौकरियों व मजदूरी जैसे कार्य भी करने लगे हैं।

वर्तमान में इस बिरादरी में धार्मिक षिक्षा के साथ–साथ स्कूली षिक्षा पर भी ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन इस बिरादरी को उत्साहपूर्ण प्रारंभिक षिक्षा भी नहीं मिल पाती तथा कुछ ही लड़के स्नातक स्तर तक पहुंच पाते हैं। ये आज भी आधुनिक षिक्षा व आधुनिक चिकित्सा से अंजान हैं। मुस्लिम समुदाय में आज भी इन्हें समानता का

अवसर नहीं मिल पाया है। आज भी मुस्लिम समुदाय के लोग इनके साथ रोटी–बेटी का व्यवहार नहीं रखते हैं। लेकिन ये लोग अपने से ऊंची दूसरी बिरादरी के लोगों के हाथों का खाना–पानी ले लेते हैं। प्रो. श्यामलाल का भी अवलोकन है कि ''अपने समूह की बेहतर प्रतिष्ठा पाने के लिए हेला बिरादरी के लोग मुस्लिम समुदाय की तर्ज पर अपना सामाजिक जीवन बदलने के लिए प्रेरित हुए। हेला लोगों ने भी सफाई कामगारों के साथ मानवता के वैष्विक संबंधों को नहीं बढ़ाया है''।

धर्मांतरण की वजह से मुस्लिम बने

दूसरी ओर बाम्बे गजेटियर में हेला समुदाय के बारे में दूसरी तरह की जानकारी मिलती है। गजेटियर के अनुसार हिंदू हलालखोर धर्मांतरण की वजह से मुस्लिम बने। वे मैला ढोने का काम करते हैं। इसके अलावा पहनावा, रीतिरिवाज आदि की दृष्टि से वे हू–ब–हू मुसलमान प्रतीत होते हैं। इनके परिवारों की महिलाएं भी पुरुषों की बराबरी से काम करती हैं। यह वर्ग बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार की नशेखोरी में लिप्त है, लेकिन इसके साथ ही बेहद श्रमशील भी हैं। निकाह आदि के लिए यह लोग काजी को आमंत्रित करते हैं। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि यह लोग केवल रमजान, बकरीद के मौके पर ही मस्जिदों में जाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि दूसरे मुसलमान इनको अपने से कनिष्ठ मानते हैं। इसलिए आम मुसलमान इनसे हमेशा एक दूरी बनाए रखना पसंद करते हैं। इसी का परिणाम है कि हेला समुदाय को कुरानषरीफ पढ़ना तो दूर, उसे छूने तक की अनुमति नहीं होती।''

हिंदू और मुसलमान दोनों होने के संकेत

हेला समुदाय पर शोध कर चुकीं **शबनम के अनुसार कुछ** अपुष्ट जानकारियां इस बात की भी मिली हैं कि हेला बिरादरी के लोग हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों में मिलते हैं, लेकिन इस बारे में बहुत स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलने के कारण इस बारे में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है। इस बारे में **लेखक माता प्रसाद की बात गौरतलब है,** कि ''हेला बिरादरी (समुदाय) हिंदू और मुसलमान दोनों समुदाय में सम्मिलित है और उनकी षिक्षा भी नाममात्र की है ''। हिंदू हेला की सामाजिक स्थिति भी लगभग मुस्लिम हेला जैसी ही है। **हिंदू हेला** और **मुस्लिम हेला** की जीवन शैली में संरचनात्मक अंतर नहीं है।

ब. वाल्मीकि

मप्र में साधारणतः वाल्मीकि लोग शहरी क्षेत्रों में सफाई का कार्य करते हैं। मप्र में इनकी संख्या के बारे में कोई जानकारी नहीं है, क्योंकि वे कामगारों के समूह में गिने जाते हैं। वाल्मीकि अनगिनत कुल रखते हैं। इनके उपनाम इस प्रकार हैं, जैसे– बिलबान, भानु, भरूवा, कोरिषिया, गोहर, चौहान, वर्मा आदि। इस समुदाय में विवाह का प्रस्ताव लड़की वालों की ओर से रखा जाता है। विवाह के नियम सामान्य हिंदू विवाह जैसे ही होते हैं, हां कन्यादान के नियम अलग हैं, यहां कन्यादान लड़के के मामा द्वारा किया जाता है। विधवा एवं विधुर पुनः विवाह कर सकते हैं, जिसे नातरा कहते हैं। ये अपने ही कुल में विवाह करते हैं। ये हिंदू धर्म में विष्वास करते हैं तथा षिव, दुर्गा, नाग, हनुमान और गणेष की पूजा करते हैं। इस समुदाय में लड़के महाविद्यालय तथा लड़कियां हायर सेकंडरी स्तर तक षिक्षा में पाए गए हैं।

वाल्मीकि समाज मैला ढोने का काम कब से कर रहा है, इसके बारे में तो कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं। इसे इस बात से साधारणतः समझा जाता है कि जैसे–जैसे देश में गांव से लोगों का शहरों की ओर पलायन हुआ और कस्बों और नगरों का निर्माण हुआ, उसी समय मानव मल उठाने की किसी मशीनी व्यवस्था के अभाव में उस समय सफाई का काम कर रहे लोगों से यह काम लिया जाने लगा। जो कि धीरे–धीरे वंशानुगत होता गया और एक समय के बाद यह स्थिति आ गई कि इन परिवारों के सामने आजीविका के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा काम ही नहीं बचा। यानि मैला ढोने की जिम्मेदारी, कथित रूप से इनका कर्तव्य बता दिया गया।

अलग राज्य अलग नाम

चूंकि भंगी जाति दासों का समूह रहा है, अतः उनके स्वामियों या शक्तिषाली लोगों ने उन्हें अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग नाम दिया। जैसे –उप्र, बिहार, राजस्थान आदि स्थानों में भंगी मेहतर, झड़माली, हलालखोर, लालबेगी तो पंजाब में इन्हें चूहड़ा नाम दिया गया। बाद में इस जाति का नाम **''वाल्मीकि** ''अधिक लोकप्रिय हो गया। सन् 1931 में इसे सरकारी स्वीकृति मिल गई''।

जाति और जातीय समीकरण

प्रो. एमएन श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जाति के लेखक हैं। वे ऑक्सफोर्ड विवि में भारतीय समाजशास्त्र के व्याख्याता रहे हैं। वे भारत के साथ दुनिया के अनेक देशों में समाजशास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं। भारत में जातिवाद और दलितों के साथ भेदभाव पर **प्रो. श्रीनिवास कहते हैं कि** इस देश में बहुत थोड़े से लोग ही जाति व्यवस्था के समाप्त होने की आकांक्षा रखते हैं। बहुसंख्यक विशेषकर हिंदू जाति व्यवस्था का अंत होते नहीं देखना चाहते, बल्कि उनके लिए किसी जाति विहीन सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करना भी प्रायः बहुत मुश्किल होगा। ग्रामीण इलाकों में बसने वाले ज्यादातर लोगों के लिए जाति का मतलब आसपास के गांवों समेत सभी प्रकार के सगोत्री और विवाहजन्य रिश्तेदारों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। हमारे समाज के लोगों को संयुक्त परिवार और जाति से कुछ ऐसी सुविधाएं हासिल हैं ,जो पश्चिम के औद्योगिक रूप से विकसित देशों के कल्याणकारी राज्यों में ही लोगों को हासिल हैं । अक्सर किसी व्यक्ति के आरम्भिक मित्र उसकी जाति के होते हैं, उसके रिश्तेदार भी उसी की जाति के होते हैं और यह सब मिलकर उसके परिचय के दायरे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाते हैं। कोई जाति अपने आप में स्वायत्त नहीं हो तो भी कुछ हद तक सांस्कृतिक एकरूपता का स्वरूप तो रखती ही है।

श्रीनिवास एक और बात पर विशेष जोर देते हैं कि देश में बमुश्किल सैकड़ों की संख्या में ही ऐसे लोग होंगे जो जातियों को हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए खतरनाक समझते हैं। वे जोर देते हैं कि जब तक लोग खुद ही इस बात को समझ न लें कि जाति का अनिवार्य अर्थ जातिवाद है और उससे मिलनेवाली सुविधाओं के बदले पूरे देश को बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ती है, तब तक कुछ नहीं हो सकता है। इस तथ्य से आम जनता को वाकिफ कराना कोई आसान काम नहीं है और अभी तक न तो किसी राजनीतिक और न ही किसी सामाजिक कार्यकर्ता ने ऐसी किसी समस्या के प्रति कोई दिलचस्पी दिखाई है। यहां इस बात का उल्लेख बेहद आवश्यक है कि श्रीनिवास जी ने जाति पर यह विचार 1952–1962 के बीच लिखे अपने लेखों में प्रकट किए थे।

वे इस बात को लेकर बहुत स्पष्ट थे कि देश के सामाजिक, राजनैतिक विकास में समस्याएं जाति व्यवस्था की ही देन हैं। इसको समाप्त किए बिना हम एक असल गणतंत्र की कल्पना नहीं कर सकते, लेकिन साथ ही उनको यह डर भी था कि जाति व्यवस्था को मिटाने के लिए कहीं कुछ होने नहीं जा रहा है। इसके लिए न तो कोई राजनीतिक दल सामने आएगा और साथ ही अगड़ी जातियों की ओर से भी ऐसी पहल होने की संभावना कम है।

उनका आंकलन कितना सटीक था, यह कहने की आवश्यकता नहीं। आजादी के इतने बरस बीत जाने के बाद भी अभी तक जाति के मुद्दों पर पार्टियां मौन हैं, क्योंकि उनकी राजनीतिक ताकत का केंद्र ही जातियों पर विभाजित समाज है। सवर्ण जाति व्यवस्था से मिलने वाले लाभ के इतने अभ्यस्त हैं कि वे किसी भी हालत में जातिविहीन

समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जाति का रोग इस हद तक समाज में अपनी जड़ें जमा चुका है कि इस बात को पूरा करने के डर से तथ्यों के मूल्यांकन के प्रति हमेशा ही धूर्ततापूर्ण रवैया अपनाया जा रहा है।

हम आजादी की सालगिरहों और गणतंत्र की वर्षगांठों पर प्रगतिशील प्रस्ताव रखने और उनका प्रचार करने से ही संतुष्ट हो जाते हैं। यह वास्तव में समाज के बुद्धिजीवियों का छल है, क्योंकि वे ऐसे प्रस्ताव रखने के सिवाए कुछ करते नहीं हैं, ताकि उनका दंभ भी कायम रहे और जातिवाद जैसा है, वैसा ही कायम रहे। इस प्रकार समाज के कथित जाति आधारित सोपान का खामियाजा सदियों से लोग भुगत रहे हैं और आगे भी उनको इससे राहत मिलने की आस कम ही है।

जातीयता की भावना हम भारतीयों के सामाजिक, राजनीतिक जीवन में इतनी गहराई तक पैठ कर गई है कि उच्च जातियों के लिए यह एक अघोषित संविधान जैसा है। बचपन से लेकर युवा होने तक बच्चों को जाति के इतने सबक सिखाए जाते हैं कि वह जिंदगी भर इनकी जकड़न से खुद को अलग नहीं कर पाते हैं। इसलिए विशेष अवसरों पर महज प्रस्ताव और कानून बनाने का बहुत अधिक महत्व नहीं है, क्योंकि इससे हमें भ्रम होता रहता है कि हम सचमुच ही कुछ कर रहे हैं और मैं फैलोशिप के अनुभवों के आधार पर बिना संकोच कहने का साहस कर रहा हूं कि जाति नामक सामाजिक संगठन में असाधारण शक्ति निहित है और इसको खत्म करना असंभव सरीखा है। चलिए इसे थोड़ा सकारात्मक लहजे में कहें तो भी इ**ससे अधिक नहीं कहा जा सकता कि इसे समाप्त होने में कम से कम दो–तीन सौ वर्षों का वक्त लगेगा।** वास्तव में समाज की जाति पर पकड़ इतनी व्यापक और विकराल है कि इससे कम वक्त की कल्पना करना अपने को झूठी तसल्ली देने से अधिक कुछ नहीं होगा।

बीते कुछ वक्त में दलितों और उच्चवर्गीय हिंदुओं के बीच संघर्ष में तेजी से इजाफा हुआ है। पहली नजर में यह तनाव पैदा करने वाली घटनाएं लगती अवश्य हैं, लेकिन वास्तव में यह उस रास्ते पर चलने की आहट है, जहां से समाज समतामूलक स्थितियों की ओर जाने वाला है। पहले अछूतों पर मनमाने अत्याचार होते थे, जिनका विरोध करने का साहस किसी दलित में नहीं होता था, अब जबकि कुछ हद तक शिक्षा में हिस्सेदारी बढ़ने से मुख्यधारा में आने की छटपटाहठ को वे महसूस करने लगे हैं, संघर्षों में तेजी होना लाजमी है। वास्तव में इस तनाव को बढ़ाए बिना दलितों को संविधान द्वारा दिए गए अधिकार कभी हकीकत में नहीं बदल पाएंगे। जैसे–जैसे शिक्षित हरिजनों की संख्या बढ़ेगी और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा वैसे–वैसे हिंदू बहुसंख्यकों के उन कठोर आदेशों के खिलाफ उनका आवाज उठाना भी सहज होता जाएगा, जिनके कारण वे पंगु हैं। मंदसौर, देवास में मैला ढोने वालों के लिए काम करने वाली क्रांति ने जिस आत्मविश्वास से एक चाय वाले की दुकान में मैला ढोने का काम करने वालों को चाय नहीं देने पर बवाल का किस्सा सुनाया, जिसके बाद उनको चाय मिलना शुरू हो गई। उससे मेरी इस धारणा को बल मिला कि गांव–देहातों में आने वाले समय में अधिकारों को पाने के लिए हिंसा का प्रयोाग अधिक तीव्रता से किया जाएगा। क्योंकि मनुवादी ढांचे के शीर्ष पायदान पर विराजमान उच्च जातियों के हिंदुओं से जीवन के सम्मान के लिए मामूली अधिकार लेना भी आसान नहीं है। मप्र महिलाओं के साथ विशेषकर दलित महिलाओं के साथ अत्याचारों के मामले में खासा बदनाम राज्य है। जो वास्तव में दलित–सवर्ण समाजों के आपसी संबंधों की बखूबी पोल खोल देता है। इसलिए दलितों विशेषकर मैला ढोने वाले समाजों हैला, वाल्मिकियों की राह आसान नहीं है।

3. विरासत के संदर्भ

महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ

(1) अछूत कौन और कैसे

डॉ. भीमराव अंबेडकर (1998) के अनुसार भारत के इतिहास में एक समय ऐसा आया था कि जब दूसरी जमात के टूटे हुए लोग एक जगह स्थित रूप से बसे हुए लोगों के पास आए और उनसे एक प्रकार का समझौता किया, जिससे टूटे हुए व्यक्तियों, समूहों को गांवो की सीमा पर बसने की अनुमति मिल गई और बदले में उन्हें कुछ रीतियों, कर्तव्यों का पालन करने की जिम्मेदारी लेनी पड़ी। इसके मुआवजे में उन्हें कुछ अधिकार मिल गए। जो लोग गांव के बाहर या अंत में रहते थे, अंत्यज कहलाए। हेला बिरादरी भी अंत्यज का हिस्सा थी, यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से गैर हेला बिरादरी व हेला बिरादरी की वस्ती पास पास हैं, लेकिन सामाजिक, मानसिक रूप सें गैर हेला बिरादरी के लोग हेला बिरादरी के रिहायषी इलाके को हेलावाड्डी के नाम से ही जानते हैं

(2) मेन्युअल स्केवन्जिंग इन इंडिया (अ डिस्गेंस टू द कंट्री)

मेन्युअल स्केवन्जिंग इन इंडिया (1997) नामक ग्रंथ में लेखक **बी. एन. श्रीवास्तव** ने कहा है कि भारत में मुस्लिम समाज के आगमन के बाद ही कूड़ा – करकट बीनने व झाड़ू लगाने के कार्य को औपचारिक व्यवसाय के रूप में लिया गया । जो बंदी बनाए गए थे और जिन्हें शौचालय साफ करने व मानव मलमूत्रों को दूर स्थानों पर ले जाकर फेंकने के लिए बाध्य किया गया । जब ये कैदी मुक्त हुए तो इन्हें समाज ने स्वीकार नहीं किया और इन्हीं में से कुछ हेला बिरादरी के नाम से जाने गए ।

(3) डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस (1982) वाल्यूम –2

डॉ. अंबेडकर का असंगठित श्रमिक, जिसमें हेला समुदाय का भी समावेष होता है, के संबंध में अभिमत है कि श्रमिक निर्वाचन क्षेत्रों से असंगठित श्रमिकों के लिये प्रतिनिधित्व की आवष्यकता है। अतः यह बेहतर होगा कि नागरपालिका में कार्यरत कर्मचारियों को विषेष प्रतिनिधित्व दिया जाए क्योंकि वे नगरपालिका में कार्यरत सामान्य श्रमिकों की अपेक्षा अधिक रूचि रखते हैं और अधिक श्रम करते हैं। (बॉम्बे लेजिस्लेटिव अमेंडमेंट, वाल्यूम –3,पृ. क्र. 2807–08, दिनांक 3 मई 1938)

(3) मैं भंगी हूं

भगवान दास ने अपने ग्रंथ **मैं भंगी हूँ** (1998) में स्पष्ट किया है कि चातुवर्ण सामाजिक व्यवस्था में भंगी का स्थान सबसे निम्नतर रहा है, तथा वे मूलभूत अधिकारों से वंचित रहे हैं। लेकिन वर्तमान व्यवस्था में शासकीय योजनाओं का लाभ पाकर वे उन्नति करने लगे हैं, जवकि मुस्लिम समुदाय में हेला बिरादरी आज भी निम्न स्थिति में है। आधुनिक षिक्षा प्रणाली, औद्योगिकीकरण, साफ–सफाई के आधुनिक तौर–तरीके उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक सिद्व हुए।

(4) उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज

लेखक के. एम. मिश्रा ने **उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज** (1974) नामक ग्रंथ में कहा है कि पूर्व में मुस्लिम षिक्षा का मुख्य उद्देष्य विद्यार्थियों को धर्मतान्त्रिक राज्य में यथोचित रूप से रहने, धार्मिक विधि में विष्वास रखने तथा इस्लाम के उत्कर्ष के लिए एक सच्चे मुसलमान की भांति सच्ची लगन से दीक्षित करना था। आज भी मुस्लिम षिक्षा का मुख्य उद्देष्य यही है चूंकि हेला बिरादरी भी पारस्परिक मुस्लिम षिक्षा ग्रहण करती है। फलस्वरूप यह आधुनिक षिक्षा से आज भी बहुत दूर है। यही बात प्रस्तुत अध्ययन में भी अवलोकन में आई है जिसे निष्कर्ष क्रमांक 12 में उल्लेखित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन विषय के लोग भी असंगठित श्रमिकों की श्रेणी में आते हैं।

(5) भारतीय नारी, दषा दिषा

आषारानी व्होरा ने इस पुस्तक में भारत की मुस्लिम महिलाएँ (1983) नामक अध्याय में भारतीय मुस्लिम महिलाओं को हिन्दू समुदाय की महिलाओं के समकक्ष रख उन्हें इस्लाम द्वारा दिये गये अधिकारों के बारे में बताते हुए कहा है कि मुस्लिम समुदाय में समृद्ध व आधुनिक परिवारों की लड़कियाँ तो प्रगति पर हैं, लेकिन मध्यमवर्गीय परिवारों में लड़कियाँ आज भी संघर्षरत हैं।
इसी पुस्तक में लेखिका आषारानी व्होरा ने निम्न वर्गों में नामक अध्याय में बताया है कि प्रायः यह समझा जाता है कि बिना कानूनी अड़चन के तलाक और पुर्नविवाह का परंपरागत अधिकार रखने तथा स्वयं की रोटी कमाकर आत्मनिर्भर होने के कारण ये महिलाएँ मध्यमवर्गीय महिलाओं से कम शोषित होती हैं, परंतु ऐसा नहीं है । एकदम निरक्षर होने से उनके दुखदर्द की कहानियॉ प्रायः उन तक ही सीमित रहती हैं या बचपन से शोषण के वातावरण में पलने की अभ्यस्तता और अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण अनभिज्ञता से उत्पन्न एक परंपरागत संतोष उन पर लदा होता है। ठीक यही स्थिति हेला बिरादरी की महिलाओं की भी है ।

(6) द भंगी इन ट्रांजिषन

द भंगी इन ट्रांजिषन (1984) नामक पुस्तक में श्री श्यामलाल ने राजस्थान के सफाई कामगारों की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बारे में बताया है । साथ ही हेला बिरादरी की स्थिति का परिचय देकर प्रत्येक धर्म से संबंध रखने वाले सफाई कामगारों की स्थिति के बारे में बताकर पूर्व,वर्तमान व भविष्य के लिए सचेत किया है। इसका अभिप्राय यही है कि जो बिरादरी पूर्व में सामाजिक रूप से नीचे थी, वह आज भी और परिस्थितियॉ नहीं बदली तो वह भविष्य में भी वैसी ही रहेगीं ।

(7) इंडियन मुस्लिम्स, हू आर दे

इंडियन मुस्लिम्स, हू आर दे'' नामक ग्रंथ में लेखक के. एस. लाल (1980) ने बताया है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने युद्व में जीते हुए, युद्व के कैदियों को गुलाम बनाया। और मुस्लिम जनसंख्या की बढ़ोत्तरी में योगदान दिया, भले ही वह राजनैतिक हेतु से किया गया योगदान ही क्यों ना हो।

(8) वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर

लेखक मस्तराम कपूर (1996) मंडल रिपोर्ट ने अपनी पुस्तक वर्णव्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की ओर में जातियों के विभाजन और स्तरीकरण को देष के लिए घातक बताया है । लेखक के अनुसार यह विभाजन सिर्फ हिंदू जाति में ही नहीं हुआ, बल्कि मुस्लिम, इसाई और सिक्ख धर्मों में जाने के बाद भी यह जातिगत सीढ़ियॉ बनी रहीं । आज हम किसी भी ऐसे धर्म, समुदाय को

जाति व्यवस्था से मुक्त नहीं कह सकते हैं। यह प्रभाव मुस्लिम बिरादरी पर भी पड़ा है जो हेला बिरादरी के विकास में रूकावट है।

(9) भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ

भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ (1996) राजकिषोर द्वारा संपादित ग्रंथ में भारतीय मुसलमानों की समस्याओं शीर्षक में लेखक इम्तियाज़ अहमद ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम समुदाय में हेला बिरादरी का मुख्य व्यवसाय साफ – सफाई और निम्न स्तर के कार्य करने से संबंधित रहा है तथा जिनकी सामाजिक स्थिति नगण्य रही है । इस तथ्य का अवलोकन प्रस्तुत अध्ययन में भी किया गया है ।

(10) बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर और भंगी जातियां

भगवान दास ने अपने ग्रंथ बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर और भंगी जातियां (1998) में कहा हैं कि जिस प्रकार हिंदू धर्म में भंगी जातियां रही हैं, उसी प्रकार मुस्लिम समुदाय में हेला बिरादरी भंगी जातियों की तरह कार्य करती हैं। लेखक के अनुसार हेला बिरादरी में बाबासाहेब से कुछ अधिक असर नही लिया अपने कर्तब्यों के प्रति जागरूक, षिक्षा के प्रति रूझाान तथा गंदगी पूर्ण व्यवसाय से मुक्ति ही इनके जीवन स्तर को ऊंचा उठा सकती हैं।

(11) मुस्लिम समाज में हेला बिरादरी : एक नजर

डॉ राम अवतार गौतम व कमलकान्त प्रसाद द्वारा संपादित ग्रंथ अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत म प्र के दलित (2001) में लेखिका शबनम बेग ने अपने लेख मुस्लिम समाज में हेला बिरादरीः एक नजर के माध्यम से कहा है कि इस हेला बिरादरी के अधिकांष लोग सफाई कार्य से जुड़े हुए हैं। षिक्षा का स्तर निम्न है। व्यवसाायिक षिक्षा का पूणर्तः अभाव है। मुस्लिम समुदाय में भी छुआछूत का कॉटा मौजूद है, जो हेला बिरादरी को लगातार भेदता जा रहा है। भाग्यवादी इस बिरादरी के लोगों में सफाई कार्य को छोड़ने की छटपटाहट अभी भी दबी हुई है।

(12) जाति का जहर

राजकिषोर द्रारा संपादित ग्रंथ जाति का जहर (2000) में सुहेल बहीद ने मुसलमानों में ऊंच–नीच लेख के माध्यम से समझाया और निष्कर्ष निकाला है कि अषराफ वे लोग हैं जो साधन संपन्न, पढ़े लिखें सभ्य सुसंस्कृत चरित्रवान भले इंसान होते हैं, जिनकी नस्ल ऊंची होती है। जबकि अज़लाफ का षाब्दिक अर्थ उर्दू के षब्दकोष में कमीना और घटिया लिखा हैं जो कि हेला बिरादरी के लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

4. क्यों चुना मैंने हेला और वाल्मिकी समाज को ?

मैंने हेला और वाल्मिकी समाज के सामाजिक, आर्थिक अध्ययन का निर्णय लिया, पर यह निर्णय लेना सहज नही था।

भारतीय राजनीति में कांशीराम और मायावती का योगदान उनके समकालीन किसी भी दूसरे नेताओं से कहीं अधिक है। विशेषकर कांशीराम का। उन्होंने न केवल दलितों को एक राजनैतिक आधार दिया, बल्कि इसके साथ ही उनको एक आत्मविश्वास दिया। जिसने उन्हें उनकी ताकत का एहसास करवाया। यह अलग विषय का मुद्दा है कि दलित राजनीति ने बसपा के लिए किया क्या? लेकिन उन्होंने दलितों को हीनता से उठकर स्वविकास की दिशा में आगे बढ़ने के लिए कम से कम एक मंत्र तो दिया ही है।

शायद इसी जमीन पर तैयार होकर एक नए किस्म का चिंतन भी उप्र और बिहार जैसे राज्यों में विकसित हो रहा है। अब तक यह सामान्य धारणा रही है कि ज्योतिबा राव फुले और अंबेडकर का चिंतन, दर्शन अंग्रेजी हुकूमत का सर्मथक रहा है। फुले ने तो 1857 के युद्ध में उन महार सैनिकों का अभिनंदन भी किया था, जिन्होंने विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों की मदद की थी। अब इस समय उप्र और बिहार में जो दलित आख्यान रूप से रहा है, उसके मायने दूसरे हैं। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की गोष्ठी में जनवरी में इस विषय पर बेहद शोधपरक पर्चे पढ़े गए। इन पर्चों को पढ़ने के बाद मेरा रूझान हेला समुदाय के बारे में और अधिक बढ़ा। मैं इस बात की तैयारी में जुट गया कि अब शोध अध्ययन का काम इसी समाज को केद्र में रखकर करना है। गोष्ठी का जो सार तत्व निकाला और जिस पर इस समय उत्तर भारत में खासा काम हो रहा है। यह सार और इन राज्यों में विषय का केंद्र यही है कि दलित मातादीन हेला वस्तुतः आजादी के नायक थे, न कि सवर्ण मंगल पांडेय।

मैं इस विचार पर अध्ययन करने में जुटा ही था कि एक दिन अनायास ही भोपाल के आईकफ आश्रम में आयोजित एक कार्यक्रम में मेरी मुलाकात क्रांति वाल्मिकी से हुई। क्रांति और किरण दो ऐसी सगी बहनों से जो मैला ढोने के खिलाफ सचमुच क्रांतिकारी काम कर रही हैं। इन दोनों से मुलाकात ने सामाजिक भेदभाव, बहिष्कार पर मुझे नए सिरे से काम करने के लिए प्रेरित किया। मुझे एक ऐसी दुनिया के बारे में जानने का अवसर मिला, जो अब तक मेरी पहुंच में नहीं थी। सच कहा जाए तो मैंने अपने करियर में पहली बार किसी मुद्दे पर खुद को भीतर से इतना प्रेरित पाया। तभी मैंने तय किया कि मैं हेला और वाल्मिकी समुदाय पर ही अपने अध्ययन को केंद्रित रखूंगा। गौरतलब है कि सरकार ने मैला ढोने वालों के नाम सैकड़ों प्रावधान बनाए हैं, कानून बनाए हैं, लेकिन इनमें इतना विरोधाभास है कि इससे इस कुप्रथा को समाप्त करने की जगह विरोधाभास अधिक पैदा होता। सामंतवादी व्यवस्थाओं में यह समाज पिछले पंक्ति से निकल नहीं सका है। जिस तरह से बाछड़ा समुदाय में लड़कियां और महिलाएं देह व्यापार के कुचक्र से चाह कर भी बाहर नहीं आ सकी हैं, उसी तरह से हेला और वाल्मिकी समाज भी विकास के तमाम दावों के बाद भी सामाजिक कुरीतियों की जंजीरों से बाहर नहीं आ सका है। इस तरह मेरे लिए यह एक बेहद चुनौतीपूर्ण विषय था। जब मैंने इस विषय पर शोध करने का मन बनाया तो सबसे बड़ी बाधा यही थी कि मैं वाल्मिकियों के विषय में कुछ नहीं जानता था, और मुझे हेला समाज के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसी बीच मुझे देवास में मैला ढोने वालों के अधिकारों के लिए काम करने वाले मो. आसिफ के बारे में जानकारी मिली। पहली ही मुलाकात के बाद कम से कम विषय और उसकी संवेदना से मेरा परिचय हो गया, जिससे संपूर्ण अध्ययन में मुझे खासी मदद मिली।

अब तक मैं विषय चयन को लेकर स्पष्ट नहीं था लेकिन इसी बीच मुझे अब तक लगभग अज्ञात रहे दलित नायक मातादीन हेला के विषय में कुछ रोचक, नवीन तथ्य पढ़ने को मिले, जिससे मेरे विषय का चयन और अधिक स्पष्ट हो गया।

हेला समाज के बारे में अनेक किवदंतियां है। बौद्धाचार्य एसराव सजीवन नाथ ने अपनी किताब श1857 की क्रांति का जनक– नागवंशी भंगी मातादीन हेलाश में हेला समुदाय का आजादी में योगदान के बारे में अनेक नवीन तथ्य समायोजित किए हैं। उन्होंने अब तक आजादी के संघर्ष के परिदृश्य से बाहर रहे हेला समाज के बारे में ऐसी अनेक प्रेरक जानकारियां दी हैं, जो हेला समुदाय को नई प्रेरणा देने का काम कर सकती हैं।

पुस्तक के अनुसार आज का हेला समाज जिसका एक प्राचीन गढ़ इलाहाबाद माना जाता है, यह भी भारत के आदि शासक–मालिक और सर्वगुण संपन्न नागवंशी पुरोहितों की एक प्रमुख शाखा है। यह भात के मूल निवासी सर्वगुण बलशाली स्वाभिमानी नागवंशी अनार्यों के उस प्राचीन दल का ही एक छोटा–सा हिस्सा रहा है जो कभी हेलव : हेला–हल्ला के प्रचंड जेहादी ललकार के साथ लुटेरे वैदिक आर्यों से अपने धन–धरती धर्म की बहाली के लिए प्राणार्पण से जूझते हुए अपने कथित शूद्र (अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ी जाति में बंटे–बिखरे) अन्य नागवंशी भाइयों को भी जूझने के लिए प्रेरित करता रहा।

हेलाओं का गढ़ अथवा मूल स्थान इलाहाबाद एवं उसके आस–पास मिर्जापुर बनारस, सुल्तानपुर, बरेली, प्रतापगढ़, कानपुर, इटावा, फतेहपुर, बांदा, चित्रकूट आदि जैसे अन्य जनपद भले ही माने जाते रहे हों, लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि अपने पूर्वजों के प्राचीन सम्मानित जीवन से वंचित दयनीय दरिद्रता के शिकार नरकीय जीवन का बोझ ढोते, जिस कथित हेला समाज का मान–सम्मान भंग करके समय के चक्र ने उसे पतित भंगी तक बनाया था, वह एक लंबे अरसे से बांस और सरई आदि से बेना (पंखा), सूप, टोकरी, डेल, डलिया, दौरी आदि बनाने की अपनी विशेष कारीगरी तक गाने–बजाने की कला पारंगतता आदि के सहारे रोजी–रोटी कमाने के लिए भारत के अन्य क्षेत्रों, जहां उसे दूसरे क्षेत्रीय नाम दिए गए में विचरता रहा है।

विडंबना ही कही जाएगी कि कभी बांस पर अपनी विशेष कला छोड़ते हुए बेजोड़ धनुष–बाण बनाने ही नहीं, बल्कि चलाने की कला में भी अपनी महारत हासिल करने वाले इन मूल भारतीय नागवंशी धनुर्धारी योद्धाओं की अभागी संतानों को कहीं–कहीं पर पेट की आग बुझाने के लिए मेहनत–मजदूरी के रूप में झाड़ू–बुहारी जैसे गंदे घृणित अमानवीय कार्य करने को भी विवश होना पड़ा। समय की मार से दर–दर भटकते इन्हीं नागवंशी योद्धाओं, जिनका एक नाम हेला भी पड़ गया, को इनके तमाम नागवंशी भाई–बंधुओं की भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में बंसोर, डोमार, धानुक, रावत, मांग, महार, मुसहर, बजनिया, चुहड़ा, तोरी, तुरहिया, नगाड़ची, माले, मदिगा, हजरा, भुइयां, हांडी, दुसाध, धरकार, नायक, नटबेड़िया, बंजार, धीवर, कहार, चमार, पासी, धोबी, खटीक तथा जनजाति–पिछड़ा जाति आदि जैसे अन्य दूसरे अनेक नामों से भी संबोधित किया गया।

सैकड़ों वर्ष पूर्व अपनी रोजी–रोटी की तलाश में अपना मूल क्षेत्र छोड़कर हेला समाज के बहुत से लोग बंगाल भी जा पहुंचे थे। यहीं से यह जुझारू नागवंशी हेला जन बर्मा तथा पश्चिम पाकिस्तान (वर्तमान बंगलादेश) आदि दूर देषों तक पहुंच गए। आज पश्चिम बंगाल में हेलाओं की जनसंख्या इतनी अधिक है कि यदि बंगाल को हेलाओं का एक बहुत बड़ा गढ़ कहा जाए तो अनुचित न होगा। बंगाल में हेलाओं की इतनी विशाल जनसंख्या का मुख्य कारण यह भी रहा कि बंगाल में इन्हें आजीविका के लिए बेना, सूप, टोकरी आदि बनाने तथा गाने–बजाने की अपनी विशेष कला के माध्यम से कमाई के अतिरिक्त सफाई, मजदूरी आदि जैसी मामूली सरकारी नौकरियां भी आसानी से मिल जाती थीं।

नागवंशी भंगी मातादीन भी इसी हेला समाज का एक सदस्य था, जिसके पुरखे कभी अन्य हेला परिवारों की भांति बंगाल में आकर बस गए थे। सरकारी नौकरी में अंग्रेजों के संपर्क में आने पर मातादीन को अपने नागवंशी पूर्वजों के समता, स्वत्रंतता, न्याय और बंधुता पर आधारित मानवीय प्रष्नों का संचार होने लगा। मतादीन बंगाल में कलकत्ता से 16 मील दूर बैरकपुर के कारतूस बनाने वाले कारखाने में काम करता था। जहां अछूत कौम के लोग प्रायः काम करते थे। इस बीच मातादीन के अचेतन मन में सुप्त पड़ी सुख–समृद्धिपूर्ण सम्मानित जीवन की प्राचीन यादें पुनः ताजा हो उठी थी। इसी कारण वर्ण जाति, और छुआछूत के विचारों से लबरेज हिंदू समाज की परवाह किए बिना मातादीन हेला ने ब्रिटिश फौज के मंगल पांडेय नामक एक ब्राम्हण सिपाही से उसका पीतल का लोटा पानी पीने के लिए मांग लिया। तब उस ब्राम्हण सिपाही ने अपने कट्टर विचारों के कारण मातदीन हेला को फटकार दिया था।

लेकिन मातादीन हेला, जिसने कारतूस बनाने वाले उस कारखाने में जहां वह स्वयं भी काम करता था अपनी आंखों से वह चर्बी वाला कारतूस बनते देखा था। जिसे पानी की नमी और जंग से बचाने के लिए गाय और सुअर की चर्बी लगी झिल्ली पर्त चढ़ाकर सुरक्षित किया जाता था और इस्तेमाल के समय इसी कारतूस की गाय और सुअर की चर्बी लगी (पर्त) को अंग्रेजी फौज में भर्ती हिंदू–मुसलमान दोनों ही सिपाही अपने–अपने दांतों से काटते (पर्त उखाड़ते) तथा बंदूक में भरकर चलाते थे। मातादीन ने मंगल जिसे उच्च वर्ण–जाति पर बड़ा गुमान था तथा गुमान के कारण ही जिसने लोटा मांगने पर मातादीन को अपमानित किया था, तुरंत कहा कि 'तुम सब के ब्राम्हणत्व का जातीय अंहकार उस समय कहां चला जाता है, जब तुम सब अपनी बंदूकें चलाने के लिए गाय और सुअर की चर्बी से युक्त कारतूस को मुंह में डालकर उसे अपने ही दांतों से काट–काटकर बंदूकों में भरते और चलाते हो।' ब्रिटिश फौज की कारतूस बनानेवाली फैक्टरी बैरकपुर (दमदम कलकत्ता) में नौकरी करने के कारण भंगी मातादीन के मुख से निकले तथ्य की पुष्टि के लिए मंगल को किसी प्रमाण–पत्र रूपी बैसाखी की आवश्यकता नहीं थी। इसी कारण मतादीन की यह बात फौजी बैरकों में जंगल की आग की तरह फैल गई। गाय और सुअर की चर्बी की बात सुनकर हिंदू–मुसलमान सभी भारतीय सिपाही ऐसे भड़के कि देखते ही देखते अंग्रेज सरकार के विरुद्ध एक विप्लव उठ खड़ा हुआ। इस तरह से देखा जाए तो 1857 की क्रांति में हेला समाज का अहम योगदान है, क्योंकि यदि मातादीन ने उस समय साहस नहीं दिखाया होता तो बहुत संभव है कि मंगल पांडेय समेत अन्य सैनिकों में विद्रोह की भावना का संचार नहीं हुआ होता।

उल्लेखनीय है कि जहां अधिकांश जातिवादी इतिहासकारों ने इस महान दलित क्रांतिकारी योद्धा की उपेक्षा की और इस महत्वपूर्ण तथ्य पर कलम चलाने से कतरा गए, वहीं श्री राजेंद्र कुमार जैन, भगवानदास तथा अन्य कुछ लेखकों ने भंगी मातादीन की ओर थोड़ी उदारता दिखाते हूए उनके योगदान को रेखांकित किया है। उदाहरणार्थ श्री जैन अपनी पुस्तक सन श1857 ई का विप्लव और शाह जफर श के पृष्ठ 73 पर लिखा है, '' नं. 70 बंगाली पल्टन के कैप्टन राइट ने एक चिट्ठी मेजर बोटीन दमदम के नाम 22 जनवरी, 1857 ई0 को लिखी थी, चिट्ठी में लिखा था कि नं. 2 की पलटन के एक ब्राम्हण सिपाही से एक भंगी (मातादीन हेला) ने पानी पीने के लिए उसका पीतल का लोटा मांगा। जिस पर ब्राम्हण ने भंगी मातादीन को फटकार दिया। भंगी मातादीन ने ब्राम्हण को चिढ़ाते हुए कहा कि बहुत जल्दी तुम सबकी पंडिताई (ब्राम्हणपन) निकल जाएगा जब तुम सब दांत से सुअर और गाय की चर्बी से बने कारतूस को काटकर बंदूकों में भरकर चलाओगे। यह भंगी दमदम के उस कारखाने में नौकर था, जहां ये नए कारतूस बनाए जा रहे थे। इसलिए उसकी बात प्रामाणिक मानी गई। इसी एक घटना से सेना में विद्रोह फैला और इससे ही सन 1857 का गदर बना।

उक्त तथ्य की सुपुष्टि हेतु कुछ अन्य निम्म समाचार–पत्रों पर भी दृष्टिपात करना अनुचित न होगा। फैजाबाद से प्रकाशित दैनिक 'जन मोर्चा' के 8 अप्रैल 1993 ई0 के अंक में पृष्ठ 4 पर उक्त

तथ्य को उजागर करते हुए लिखा गया है कि ''31 जनवरी, 1857 को जब वे (मंगल पांडे) लोटे में पानी लेकर रसोई घर में जा रहे थे, तभी भंगी के खलासी ने मंगल पांडेय से पानी पिलाने का अनुरोध किया। पांडेय ने अपने लोटे से पानी पिलाने से मनाकर दिया। इस पर खलासी ने गुस्सा कर व्यंग्य भरे शब्दों में कहा, अपनी जाति पर बड़ा गुमान है, देखें अब उसे कैसे बचाते हो, जब अंग्रेज गाय और सुअर की चर्बी से युक्त (तर) कारतूस दांतों से काटकर चलाने हेतु देने जा रहा है। यह सुनकर मंगल पांडेय बौखला उठे और अंग्रेजों से बदला लेने की ठान ली। चर्बी प्रयोग की बात आग की तरह चारों ओर फैल गई। कलकत्ता स्थित तत्कालीन इंस्पेक्टर जनरल आफिस के रिकार्ड से यह प्रमाणित होता है कि 16 अगस्त 1857 में पशुओं की चर्बी आपूर्ति का ठेका कलकत्ता के ही गंगाधर बनर्जी एंड कंपनी को दो आना (12 पैसा) प्रति अर (की दर से) दिया गया था। चर्बी के प्रयोग से हिंदू एवं मुस्लिम दोनों सिपाही क्रोधित हो उठे। उन्हें लगा कि उनके धर्म को नष्ट करने की यह अंग्रेजों द्वारा सुनियोजित साजिश है।

भारतीय दलित साहित्य अकादमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर एम.ए., पी.एच.डी. द्वारा संपादित 'हिमायती' (पाक्षिक) के मई 1996 (द्वितीय) अंक 16 में 1857 की चिनगारी को दर्शाते हुए लिखा है कि ''1857 की आजादी की पहली लड़ाई का बीजारोपण करने वाला वह व्यक्ति और कोई नहीं मातादीन भंगी थे। लेकिन लाख अफसोस कि बहुत कम इतिहासकारों ने मातादीन भंगी के साथ न्याय किया है। मातादीन की टिप्पणी के बाद 1 मार्च 1857 को मंगल पांडेय परेड मैदान में लाइन से निकलकर बाहर आ गए। सैनिक अफसर को गोली मार दी और इस तरह विद्रोह भड़क गया। मातादीन की वह चिंगारी काम कर गई थी। 8 अप्रैल 1857 को क्रांतिकारी मंगल पांडेय को फांसी पर लटकाया गया, जो लोग गिरफ्तार हुए (जिन्हें सजाए मौत मिली थी) उनमें मातादीन भंगी प्रमुख थे। गिरफ्तार चार्ज सीट में सबसे पहला नाम किसी और का नहीं, बल्कि मातादीन भंगी का ही था। सभी गिरफ्तार क्रांतिकारियों का कोर्ट मार्शल हुआ। मातादीन भंगी शहीद हो गए।

मैनपुरी उत्तरप्रदेश से प्रकाशित समाचार–पत्र 'अनार्य भारत' के संपादक विद्वान लेखक श्री एसएल सागर भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रणेता स्वाभिमानी मूल भारतीय नागवंशी पूत भंगी मातादीन हेला के प्रसंग को दर्शाते हुए अपने 15 जून 97 के 1 अंक में लिखा है कि 1857 की छावनी की घटना के चित्रण से भी ऐसा प्रतीत होता है कि कुलीन लेखकों ने 1857 की क्रांति का श्रेय मात्र मंगल पांडेय को दे दिया, पर यह सच नहीं है। इस क्रांति का श्रेय मातादीन भंगी को जाता है। सागर के अनुसार विद्रोह (आरंभ में ं) दबा दिया गया पर विद्रोहियों पर देशद्रोह का मुकदमा चला। इस मुकदमें का प्रकरण ही सरकार बनाम मातादीन था। अंत में कई लोगों (क्रांतिकारियों) को फांसी की सजा हुई। इस मुकदमें में सबसे पहले फांसी मातादीन भंगी को ही दी गई। यद्यपि मंगल पांडेय भी इस क्रांति में शहीद हुए पर इस (क्रांति) का सूत्रधार पांडेय नहीं, मातादीन भंगी था। पांडेय के रक्तवंशी इतिहासकारों ने 1857 की क्रांति का श्रेय मंगल पांडेय को दे दिया और यह छिपा गए कि इस (क्रांति) के सूत्रधार मंगल पांडेय नहीं, बल्कि मातादीन भंगी थे।

अब तक हुई विवेचनाओं के बाद प्रकाश में आए तथ्यों के आधार पर निःसंदेह मानना पड़ता है कि 1857 की क्रांति का जनक अथवा प्रमुख सूत्रधार स्वाभिमानी मूल भारतीय नागवंशी पूत भंगी मातादीन हेला ही रहा है। उक्त तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है, जब हम मातादीन हेला और मंगल पांडेय प्रकरण की गंभीरतापूर्वक बारीकी से जांच करते हुए निम्न तथ्यों पर ध्यान देते हैं।

इस पर भी विचार हो : एसराव सजीवन नाथ के मातादीन को क्रांतिकारी बताने के विचार को लेखक एमआर विद्रोही भी समर्थन देते हैं। विद्रोही लिखते हैं कि सन 1857 ई. का समय तो दलित जातियों को सुअर, कुत्ता, बिल्ली जैसी जिंदगी जीने पर बाध्य करता था। छुआछूत उस समय तो इस प्रकार थी कि यदि कोई ब्राम्हण घर में भोजन कर रहा हो और कोई अछूत बाहर कहीं रास्ते में बोल दे और उसकी आवाज ब्राम्हण के कानों में पड़ जाए तो वह ब्राम्हण जो भोजन कर रहा हो

बिना भोजन किए उठ जाता था और साथ ही उस दिन भोजन नहीं करता था। जिस देश के समाज में इस प्रकार की मान्यताएं प्रचिलत हों, उस देश में (उस माहौल में) किसी भंगी का ब्राम्हण से पानी पीने के लिए उसका लोटा (वह भी पीतल का) मांगना कितना बड़ा क्रांतिकारी कदम था।

इस प्रकार उपरोक्त तमाम तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि अपने धन–धरती और धर्म की बाहाली में एक लंबे अरसे से लड़ते थके–हारे वर्तमान में हेला, हांडी, धानुक, धरकार, डोम, डोमार, मांग, महार, राउत, बसोर, चुहड़ा, चमार, धोबी, पासी, खटीक आदि घोषित करके अलग–अलग जातियों में बांट–बिखेरकर असंगठित कमजोर और पतित, अछूत ही नहीं, बल्कि मान–सम्मान भंग करके भंगी तक बनाए गए स्वाभिमानी मूल भारतीय नागवंशियों की जुझारू संतानों ने भारत की आजादी की लड़ाई के अवसर पर भी अपना खून बहाया तथा बहादुरी से लड़े। असंख्य स्वाभिमानी नागवंशी वीर योद्धा एवं वीरांगनाओं ने अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए कुर्बानी दी।

अतः जब भी भारतीय स्वतत्रंता संग्राम का इतिहास सच्चाई के साथ लिखा जाएगा तब न केवल अनगिनत मूल भारतीय दलित नागवंशी वीर योद्धाओं और वीरांगनाओं की कुर्बानी तथा वीरगाथा को स्वर्ण अक्षरों में बखान किया जाएगा। बल्कि 1857 की महान क्रांति जिसे अंग्रेजों ने म्योटिनी और 1857 का गदर कहा तथा भारतवासियों ने भारतीय स्वतत्रंता संग्राम की संज्ञा दी थी, उसका वास्तविक जनक और एकमात्र सूत्रधार प्रणेता निश्चित रूप से स्वाभिमानी नागवंशी भंगी मातादीन हेला को मानना ही पड़ेगा।

इस प्रकार मातादीन के बारे में तमाम जानकारियां मिलने के बाद मैंने हेला के साथ ही वाल्मिकी समुदाय के बारे में भी रिसर्च रिपोर्ट तैयार करने का निर्णय लिया।

5. कुछ अध्ययन के बारे में

उद्देष्य

1. वाल्मीकि, हेला का पारंपरिक परिपेक्ष्य जानना,उनके सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. हेला बिरादरी का सामाजिक एवं आर्थिक परिदृष्य तथा उच्च वर्गीय मुस्लिम समुदाय के साथ उनके संबंधों का अध्ययन।
3. हेला बिरादरी में हो रहे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का अध्ययन।
4. हेला, वाल्मिकी में शिक्षा का स्तर और बच्चों की शैक्षणिक स्थिति
5. हेला बिरादरी में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन।
6. हेला बिरादरी की समस्याओं का विवरण तथा उनके निराकरण हेतु उपाय सुझाना।

अध्ययन की उपयोगिता

मेरे इस अध्ययन का प्राथमिक लक्ष्य बहिष्कार झेल रहे वाल्मिकी और हेला समाज की पीड़ा को मीडिया में लाना था। अध्ययन के माध्यम से मैं नीति–निर्धारकों के सामने उन लाखों मनुष्यों की बात रखने का प्रयास कर रहा हूं जो केवल एक जाति विशेष में जन्म लेने के कारण नारकीय जीवन जीने को विवश हैं।

शोध क्षेत्र और पद्धति

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार प्रदेश के 11 जिलों में हेला और वाल्मीकि समुदाय के लोग निवास करते हैं।विशेषकर मालवा में हेला, वाल्मीकि दोनों ही समाज के लोग दूसरे जिलों की तुलना में अधिक संख्या में निवास करते हैं। मालवा के उज्जैन, देवास, नीमच, शाजापुर, राजगढ़ के साथ ही भिंड, पन्ना और हरदा, होशंगाबाद और टीकमगढ़ में भी उक्त समुदाय निवास करता है।

शोध क्षेत्रः शोध का क्षेत्र उज्जैन की हेलावाड़ी, तराना की बस्ती, और देवास के साथ ही नीमच, मंदसौर।

शोध आयोजन : हेला और वाल्मिकी

हमारे सभ्य समाज में जहां हम समस्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों के हितों की पैरवी और उनके संरक्षण की बात करते हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक समुदायों के साथ बहुसंख्यक समाज का ऐसा व्यवहार जारी है, जो किसी भी लिहाज से सभ्य नहीं कहा जा सकता है। महाकाल के लिए सारी दुनिया में प्रसिद्ध उज्जैन समेत मप्र के अनेक जिलों में हिंदू और इस्लाम दोनों ही धर्मों में ऐसे समुदाय हैं, जो अपने ही समाज का मैला ढोने को विवश हैं। उज्जैन में हेला, मुस्लिम और पास ही देवास में वाल्मीकि; हिंदू समाज सदियों से कथित उच्च वर्णों का मैला ढोने का काम कर रहे हैं। दोनों में अंतर इसी बात का ही है, कि हेला की समस्याओं के बारे में अब तक कभी गंभीरता से

बात नहीं रखी गई है। जैसे कि दूसरे मैला ढोने वाले समुदायों के बारे में यदाकदा बात होती रहती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हेला समुदाय की संख्या उतनी नहीं है, जितनी किसी राजनीतिक दल का वोट बैंक बनने के लिए होनी चाहिए। यही बड़ा कारण है कि उनके हितों की पैरवी उतने पुरजोर अंदाज में नहीं होती, जितनी होनी चाहिए। सामाजिक बहिष्कार विषय के तहत शोध के अंतर्गत हेला–वाल्मीकि दोनों ही अस्पृश्य समुदाय की समस्याओं के लिए जिम्मेदार आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कारकों के साथ ही उनके ऐतिहासिक कारणों की पड़ताल भी की जाएगी।

अध्ययन क्षेत्र की जानकारी

हेला बिरादरी के संबंध में अध्ययन का क्षेत्र उज्जैन में महाकाल से कुछ ही दूरी पर हेलावाड़ी स्थित है। जहां मुख्यतौर पर हेला समाज निवास करता है। जिसकी जनसंख्या के बारे में कोई आधिकारिक जानकारी नहीं मिल सकी, लेकिन हेला बिरादरी के सदर मुजाहिद हुसैन के अनुसार यहां लगभग 7000–8000 हेला आबादी है। देवास, नीमच और मंदसौर में वाल्मिकी बिखरे हुए हैं और उनकी जनसंख्या के बारे में भी स्पष्ट आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यहां उल्लेखनीय है कि श्री हुसैन को भी मप्र में हेलाओं की संख्या के बारे में जानकारी नहीं है। उनके अनुसार समाज का संगठन व्यवस्थित नहीं होने और आबादी के राज्य में बिखराव के कारण उनके पास कोई संख्या नहीं है।

शोध पद्धति

शोध के लिए सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों तरह की साक्षात्कार पद्धति और अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया। महिलाएं और बच्चे किसी भी समाज का सबसे अहम हिस्सा होते हैं। बच्चे समाज का भविष्य होते हैं, तो दूसरी ओर महिलाओं के साथ हो रहा व्यवहार और उनको मिलने वाली सुविधाएं सहज ही समाज का आइना पेश कर देती हैं। इसीलिए शोध के दौरान दोनो समुदायों के बच्चों और महिलाओं की समस्याओं और अन्य सामाजिक समूहों के साथ उनके रिश्तों का भी अध्ययन किया गया। वाल्मीकि समाज के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कारणों के साथ ही उनके ऐतिहासिक अवयवों की भी पड़ताल की गई।

विधि

इसके लिए उक्त समुदाय के बच्चों, सवर्ण बच्चों के साथ पहले संयुक्त, फिर एकल संवाद की प्रक्रिया अपनाई जाएगी। जिससे दबंग समाज के प्रभाव का भी अंदाजा हो सके। लेकिन जब महिलाओं के साथ संवाद होगा तो बातचीत के तीन स्तर रखे जाएंगे।

पहलाः सवर्ण महिलाओं के सामने बातचीत।

दूसराः हेला या वाल्मीकि समाज की महिलाओं के साथ एकल संवाद।

तीसराः हेला या वाल्मीकि समाज की महिलाओं के साथ पुरुषों से भी संवाद।

अनुसंधान विधि

इकाई : इस अध्ययन की इकाई उज्जैन जिले के हेला बिरादरी के परिवार, देवास के वाल्मिकी और नीमच के वाल्मिकी परिवार हैं।

साक्षात्कार के लिए हेला और वाल्मिकी समाज की शैक्षणिक, आर्थिक, स्वास्थ्य और महिलाओं की स्थिति जानने के लिए बनाई गई प्रश्नावली :

1. मैला ढोने का काम कब से शुरू किया। किसके कहने पर शुरू किया।
2. मैला ढोने के लिए विवश किसने किया।
3. क्या कारण रहे– बेरोजगारी, अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक दबाव ।
4. जब कभी मीडिया या दूसरे कारणों से इस काम को छोड़ने का मन बना तो किसने ऐसा करने से रोका।
5. लड़कियों ने काम मायके या ससुराल में से कहां शुरू किया।
6. मातादीन हेला के बारे में आपको कितनी जानकारी है।
7. जब काम छोड़ा तो सामाजिक बहिष्कार का सामना कैसे हुआ।
8. किस तरह के सामाजिक अपमान सहने पड़े।
9. अपने बच्चों को इससे रोकने के लिए आपने क्या किया।
10 बहुओं को जागीर संभालने से इंकार करने पर परिवार की प्रतिक्रिया।

अध्ययन क्षेत्र की कठिनाइयां

1. हेला और वाल्मिकी दोनों ही समुदायों के लोगों से साक्षात्कार, विमर्श के दौरान समाज के लोगों के भीतर बात करने की इच्छा नहीं थी। उन सभी को यह समझाना मुश्किल था कि मैं यह काम क्यों कर रहा हूं, क्योंकि न तो मैं किसी सरकार महकमें का कर्मचारी था और न ही किसी बड़े अखबार से जुड़ा था। उनको बातचीत के लिए मनाने वाले इसी समाज के कुछ मित्रों ने कई बार मुझे बताए बिना इन लोगों को यकीन दिलाया कि मैं इन जानकारियों को ले जाकर सरकार के सामने रखूंगा, जिससे उनकी समस्याएं कम होंगी। इससे उस समय तो काम हो गया, लेकिन बाद में लोगों ने मुझे शिकायती फोन करने के साथ ही कुछ मित्रों के पास इस बात की विधिवत शिकायत करते हुए कहा कि मैंने लुभावने वादे किए थे।

2. **जनगणना में शामिल नहीं :** जनगणना में हेला जाति की पृथक से गणना नही की गई, इनकी जनसंख्या अनुसूचित जाति की जिलेवार जनगणना में शामिल है। सरकार के पास इस बिरादरी के सही आंकड़े भी उपलब्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक इस तरह के आंकड़ों को तो उछाल देते है पर इन्हें ैड की तरह सरकारी सुविधाएँ नहीं दी जाती, क्योंकि इसका कोई संवैधानिक आधार नहीं है।

6. हेला और वाल्मीकि समुदाय के बच्चे और महिलाएं

इन दोनों समाजों को बाहर से देखने पर तो यह संपूर्ण समाज एक जैसा ही सवर्ण समाज से पीड़ित दिखेगा, लेकिन जब हम इस समाज विशेष के ताने–बाने की बात करते हैं, तो पाते हैं कि यहां महिलाओं और बच्चों की हालत बेहद खराब है। अन्य समाजों से पीड़ित होने के बाद यहां भी स्त्री को दोहरी मार झेलनी पड़ रही है। इस मामले में दोनों समुदायों के बीच वास्तव में हिंदू और इस्लाम का अंतर भी मिट गया है, क्योंकि दोनों ही धर्मों में इस प्रथा का सारा दारोमदार महिलाओं पर ही है। इस बात की गवाही आंकड़े देते हैं। इस समय उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार मप्र के शहरों और ग्रामीण इलाकों में मैला ढोने वालों की कुल संख्या 2274 है, जिसमें से मात्र 112 पुरुष हैं। जबकि महिलाओं की संख्या 2162 है। तस्वीर एकदम स्पष्ट है कि समाज कैसा भी हो पिसना महिला को ही है। नजीर देखिए कि देवास में इस काम में कुल 129 लोग लगे हुए हैं, जिनमें से केवल 2 ही पुरुष हैं। यह आंकड़ा वास्तव में यह बताने के लिए पर्याप्त है कि हर समाज में मुश्किलें झेलने का काम महिलाओं को ही करना है। इस शोध के दौरान इस बात को सामने लाने का पूरा प्रयास किया जाएगा कि मुख्यधारा से बाहर किए गए इन लोगों के बीच स्त्री का यह समाज खुद किस तरह से शोषण करता है। इसी तरह से इस समाज के बच्चों को दबंग या सवर्ण समाज के बच्चों द्वारा कभी भी बराबरी का सम्मान नहीं दिया जाता है। क्योंकि अन्य समाज के लोग अपने बच्चों को यह संस्कार ही नहीं देते। सवर्ण बच्चों को हमेशा कहा जाता है कि अपनी मर्यादा में रहो। बच्चे देश का भविष्य हैं। जाहिर है, जैसे संस्कार होंगे, वह वैसा ही आचरण करेंगे। यही कारण है कि बहुसंख्यक समाज के बच्चों द्वारा इस समाज के बच्चों से हमेशा गैर बराबरी का व्यवहार किया जाता है। यहां तक देखा गया है कि उनको स्कूलों में पीछे बैठने और सवर्णों के बस्ते ढोने तक के काम के लिए विवश किया जाता है।

सामाजिक बहिष्कार कैसा और क्यों?

हैला और वाल्मिकी समाज का जिस तरह से बहिष्कार समाज के उच्च वर्गों द्वारा किया जा रहा है, वह दूसरे सामान्य किस्म के बहिष्कारों से सर्वथा अलग है। दरअसल मनु की वर्णवादी व्वस्थाओं के कारण हमारा समाज अपनी अनेक आवष्यकताओं के लिए उस वर्ग पर ही निर्भर है, जो कि उसके द्वारा ही बहिष्कृत है। ऐसे में एक सोची समझी योजना के तहत उस वर्ग को आप अधिकारों से वंचित कर देते हैं, जिससे आपको सेवाएं प्राप्त करनी हों। ऐसा इसलिए किया जाता है, ताकि सेवा प्रादाता हीनभावना से भरा रहे और बिना किसी मूल्य के समाज के दबंग उसका षोषण करते रहें।

तराना की कनीज बी ने मुझे बताया था कि जब एक बार उनके घर के मर्द किसी काम से बाहर चले गए तो तराना के एक बड़े जमींदार की पत्नी उनके घर के सामने आकर गालियां देने लगी। उसने धमकाते हुए कहा, कि तुम भंगियों के भाव बहुत बढ़ गए हैं। हमारा घर सडांस की बदबू से सड़ा जा रहा है और तुम लोग मौज कर रहे हो। **इस तरह के ताने रोजाना की बाते हैं।**

कनीज बी ने थोड़ा रूककर मुझसे कहा, हमें हर रोज पखाना साफ करने के महीने में पचास रुपए मिलते हैं। मैंने आष्चर्य से कहा, बस! क्वेल पचास रुपए! उन्होंने कहा था,साब आपको कम लगते हैं, लेकिन यह इन लोगों के लिए बहुत ज्यादा है। उन्होंने अपनी बात जारी रखी, जब घर में कोई नहीं होता है तो उस वक्त घर में बड़ा छोटा जो भी हो उसे ही मैला उठाने के लिए जाना होता है।

तराना की ही मेराज कहती हैं कि एक ओर सरकार कहती है कि काम बंद कर दो, तो दूसरी ओर सरकारी अफसर कहते हैं कि काम बंद कर दोगे, तो छात्रवृत्ति बंद कर दी जाएगी। जहां कहीं भी मैला ढोने की प्रथा अस्तित्व में है, वहां पर एक बात स्पष्टतौर पर समझ में आती है कि दूसरे कथित उच्च वर्ग के लोग इस बात के पूरे इंतजाम करने में लगे रहते हैं कि वह वर्ग आगे नहीं बढ़ सके। गांवभर के लोग पूरी सामाजिक, आर्थिक ताकत इस बात में झोंक देते हैं कि किसी भी तरह से हेला या वाल्मिकी समुदाय के लोग षिक्षा से दूर रहें। विचार से दूर रहें। उनके यहां पषुओं सरीखा श्रम करें और न तो दाम मांगे और न ही मनुष्यों जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखें।

इस बात को हम इस तरह से भी समझ सकते हैं कि यदि यह वर्ग षिक्षा की राह पर चलने लगेगा तो उनकी उस अमानवीय विलासिता का क्या होगा, जो कि उनके अषिक्षित रहने से मिल रही है।

कुल मिलाकर हेला और वाल्मिकी समुदाय की स्थिति बाछड़ा समुदाय जैसी ही है। अगर बाछड़ा समुदाय के लोग एकदम से इस बात के लिए तैयार हो जाएं कि उनकी बेटियां वेष्यावृत्ति नहीं करेंगी, तो इस बात से सबसे अधिक परेषानी स्थानीय सवर्ण माफिया को ही होती है। क्योंकि ऐसा कर देने से पुलिस के धंधे पर असर पड़ने के साथ ही कथित सफेदपोषों की ऐषगाहों पर भी अंतर पड़ेगा।

मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि जिस तरह से बाछड़ा समुदाय को जानबूझ कर देह व्यापार के दलदल से निकालने में मदद नहीं की जाती है, ताकि समाज की विलासिताओं की पूर्ति हो सके, इसी तरह से कस्बाई इलाकों में लोग महज एक हजार रुपए की रकम इसलिए खर्च नहीं करना चाहते ताकि एक तबका उनका गुलाम बना रहे। उनके घर की चौखट पर अपनी बुनियादी आवष्यकताओं के लिए सदैव झुका रहे।

इस तरह से हम पाते हैं कि यह एक सोचे समझे बहिष्कार की साजिष है, ताकि वर्ग विषेष से अपनी गुलामी करवाई जा सके। उनसे घर के पखाने के साथ ही गंदी नालियां, घरों की सफाई करवाई जा सके। श्इससे लड़ने के लिए दलितों के भीतर समग्र दलित चेतना के विकास की आवष्यकता है, जहां से वह तय कर सकें कि भूखे रहना तो मंजूर है, लेकिन किसी भी सूरत में उनके हाथ डलिया नहीं उठाएंगे। सुमित्रा बाई का जिस तरह से हौसला तोड़ा गया, यह एक साजिष का ही हिस्सा था, लेकिन इसमें वाल्मिकी समुदाय की आपसी एकजुटता में कमी भी थी। इसलिए इस बहिष्कार से लड़ने के लिए व्यापक तैयारी की आवष्यकता है।

इस तरह हेला वाल्मीकि समुदाय को मिलने वाले सहज अधिकारों से वंचित रखा जाता है। ऐसे में भला यह कैसे संभव है कि इन लोगों को संविधान, सरकार द्वारा तय की गई योजनाओं का लाभ मिले, क्योंकि जैसे ही उन तक योजनाएं पहुंचेंगी वह सवर्णो की कृपा से मुक्त हो जाएंगे। इस रूप में मैला ढोने का काम समाज की सामंती सोच को भी प्रकट करता है। अपनी बहुचर्चित किताब स्पार्टकसश में हावर्ड फॉस्ट लिखते हैं कि दुनिया का वह वर्ग जो कि साधनों से लैस है ,उसे लोगों पर शासन करने, उनको कीड़े–मकोड़ों की तरह जीते हुए देख कर तृप्ति का अनुभव होता है। कमोबेश यही विचार उन ताकतवर तबकों के पीछे काम करता है, जो मैला ढोने जैसी प्रथाओं को किसी कीमत पर बंद नहीं होने देना चाहते हैं। इस शोध का लक्ष्य मैला ढोने वाले समाज की विवशताओं को प्रकट करने और सवर्णों के पारस्परिक रिश्तों की पड़ताल के साथ ही पीड़ित समाज

के भीतर ही स्त्री की दशा, बच्चों के विकास, शिक्षा के साथ ही उनके भीतर अपने छोटे होने की मनोवैज्ञानिक बाधा को सामने लाना होगा।

7. ये कहानियां नही सच्चाई है

रीना का टूटना

फैलोशिप के दौरान मेरी मुलाकात नीमच के वाल्मिकी समाज की एक लड़की रीना से हुई। जिसने स्कूल इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि उसे स्कूल में सबसे पीछे बैठने, पानी नहीं पीने और झाड़ू लगाने की आज्ञा का पालन करना होता था। रीना को स्कूल क्यों छोड़ना पड़ा? इस बात पर कुछ गुस्से का इजहार करते हुए रीना बताती हैं कि उसे मास्टर किसी न किसी बहाने रोजाना पीटते थे, वे पूरे मैदान की सफाई करने को कहते और जब पढ़ने की बारी आती तो होमवर्क पूरा नहीं करने के बहाने कक्षा से बाहर निकाल देते थे। जी हां, यही है सामाजिक बहिष्कार की ताजा, एकदम ताजा परिभाषा। श्री वाल्मिकी ने जो कुछ भोगा, उसे तीन–चार दशक पुराना कह सकते हैं, सामंतवादी युग का असर कह सकते हैं, लेकिन जो कुछ रीना ने सहा, उसे क्या कहा जाए। इस जमात में अकेली रीना नहीं हैं, बड़ी संख्या में ऐसी रीना समूचे मप्र ही नहीं पूरे देश में हैं। जिनकी पीड़ा को हमारे चौथे स्तंभ के किसी कोने में सिंगल जगह तक नहीं नसीब हो पाती है। शायद इसीलिए राजेंद्र यादव जैसे चिंतक यह मानते हैं कि दलित की पीड़ा वही बता सकता है। दूसरा कोई नहीं। क्योंकि जिसने भोगा नहीं है, उसके अंदर की संवेदना कितनी भी प्रखर क्यों न हो वह उस गहराई से सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकती, जिसकी आवश्यकता होती है। क्या मीडिया में दलितों के अत्याचारों को प्रमुखता नहीं मिलने का यही कारण है कि मीडिया में दलित वर्ग के पत्रकारों की संख्या बेहद कम है। अधिकांश पत्रकार और मीडिया में बैठे हुए शक्तिशाली लोग समाज के कथित अपर कॉस्ट से हैं।

फैलोशिप के दौरान स्कूली बच्चों ने अनेक तरह के किस्से सुनाए, जो स्कूली शिक्षकों की प्रताड़ना से संबंधित थे। उन्होंने मुझे बताया कि किस तरह से उनसे स्कूल की सफाई करवाई जाती थी, पढ़ाई के दौरान जातिसूचक गालियां दी जाती थीं। उदाहरण के रूप में मैं यहां नीमच की एक लड़की की कहानी उल्लेखित कर रहा हूं, खुद उसकी ही भाषा में। आजादी के पहले और उसके बाद के परिवेष को समझने के लिए **हम यहां दो तरह के आत्मकथ्य दे रहें हैं।** पहला ओमप्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा जूठन से लिया गया है और दूसरा बिल्कुल वैसा जैसा कि मुझे नीमच की रीना वाल्मिकी ने बताया।

आधुनिक गुरू द्रोण

अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है; जब भी कोई आदर्श गुरू की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं, जो हमारे जैसों को मां–बहन की गालियां देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।

एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर मुझसे पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?'

'' ओमप्रकाश '', मैंने डरते–डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया।

हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।

''चूहड़े का है।'' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।

''जी।''

''ठीक है, वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़के झाड़ू बना ले। पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे, जैसा सीसा। तेरा तो ये खानदानी काम है। जा फटाफट लग जा काम पे।''

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिए। तभी वे खुद चलकर आए और बोले,'' इसके बाद मैदान भी साफ कर दे।'' लंबा–चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था, जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी। धूल से चेहरा, सिर अंट गया था। मुंह के भीतर धूल घुस गई थी। मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था ! हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे, लेकिन निगाह मुझ पर ही टिकी थी। पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी। पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा। तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था। वैसे भी घर में सबका मैं लाड़ला था।

दूसरे दिन मैं फिर स्कूल पहुंचा। जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया। पूरे दिन झाड़ू देता रहा; मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ पाउंगा। तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, ''अबे, ओ कहां है तू। कहां घुस गया बे।

उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर–थर कांपने लगा था। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, ''मास्साब, वो बैठा है कोणे में।'' हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उंगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, '' जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू, नहीं तो तुझे बाहर खड़ा कर दूंगा।

भयभीत होकर मैंने तीन दिन पुरानी वही शीशम की झाड़ू उठा ली। मेरी तरह ही उसके पत्ते सूखकर झड़ने लगे थे। सिर्फ बची थीं पतली–पतली टहनियां। मेरी आंखों से आंसू बहने लगे थे। रोते–रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा। स्कूल के कमरों की खिड़की, दरवाजों से मास्टरों और लड़कों की आंखें छिपकर तमाशा देख रहीं थी। मेरा रोम–रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था। तभी संयोगवश मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे। मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देखकर ठिठक गए। बाहर से ही आवाज देकर बोले, ''मुंशी जी, ये क्या कर रहा है?'' वे प्यार से मुझे मुंशीजी ही कहा करते थे। उन्हें देखकर मैं फफक पड़ा। वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए। मुझे रोता देखकर बोले, ''मुंशी जी, रोते क्यों हो? ठीक से बोलो, क्या हुआ है?

मेरी हिचकियां बंध गईं थी। हिचक–हिचककर पूरी बात पिताजी को बता दी कि तीन दिन से रोज झाड़ू लगवा रहे हैं। कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते।

यह आत्मकथ्य 70–80 के दशक का है। मेरे बहुत से मित्रों का ऐसा कहना है कि अब यह सब कुछ नहीं होता, चलिए पढ़ते हैं, रीना के अनुभव जिसके कारण उसने स्कूल छोड़ दिया।

13 अगस्त 2007, पीपल्या रावजी, नीमच

स्कूल छोड़ने के पांच साल बाद रीना बाल्मिकी (19 वर्ष) की कहानी, उन्हीं की जुबानी

इसलिए मैंने स्कूल छोड़ा...

श्हमको स्कूल में जब दूसरी लड़कियां भंगन कहती थीं और जब हम पाटीदार मॉस्टर से इसकी शिकायत करते थे, तो वह कहते थे, आदमी को अपनी औकात नहीं भूलनी चाहिए। तुम तो भंगी हो, या में बुरा माणवे की कौन सी बात है। मेरा मास्टर बात–बात में मुझे बाल खींचकर उठाता था और भरपूर ताकत से पीठ पर मुक्के रसीद करता था। मैं घर में यह सब बताती तो मां कहती कि बेटा, तेरी बड़ी बहन भी तो वहीं पढ़े हैं। उसे भी सब सहणा पड़े है। हमारी जात ही छोटी है, सो पढ़ाई के लाणे सब करना पड़े है। मैं सब सहती रही, झाड़ू लगाती रही, प्यासी रहकर पिटकर पढ़ती रही। लेकिन एक दिन मेरा सब्र टूट गया। सुबह से स्कूल की सफाई की, मैदान साफ किया, छोटे बच्चों में एक ने मैदान में लेट्रिंग कर दी, तो उसे भी मास्टर ने साफ करने को कहा, वैसे यह रोज की ही बात थी। यह सब करते हुए दोपहर हो गई। प्यास के मारे गला सूख गया था, मास्टर ने कहा था कि आज बच्चे देर तक रूकेंगे। एक दो बच्चों से कहा कि पानी पिला दो जब किसी ने नहीं सुना तो मुझसे नहीं रहा गया तो मटके के पास जाकर लोटे से पानी निकाल लिया। लेकिन किसी लड़के ने देख लिया और मेरे मना करने के बाद भी मास्टर को बता दिया, फिर क्या था। पाटीदर ने मुझे डंडे से इस कदर पीटा कि मैं अधमरी हो गई। उसने जी भर कर मेरी मां–बहन को गालियां दी थी। इसके बाद मैं स्कूल नहीं गई। मां–बहन ने बहुत साहस बंधाने का जतन किया, लेकिन मैं हिम्मत हार चुकी थी। श

सुमित्रा होने का मतलब

जी हां, यह इस सदी की सच्ची कहानी है। अमानवीय पीड़ा, सवर्ण समाज के प्रगतिवाद के खोखले दावों की दास्तान। हम में से बहुतों को एक छोटे बच्चे का मल उठाने में भी कोफ्त होती है लेकिन हमारे प्रदेष में आज भी हजारों की संख्या में हिंदुओं में वाल्मिकी और मुस्लिमों में हेला समुदाय के लोग मैला ;मलद्ध ढोने का काम कर रहे हैं। प्रदेष के अनेक जिलों की तरह देवास में भी मैला ढोने का काम आम बात है। वाल्मिकी समाज इसे अपनी जागीर कहता है। जो वास्तव में सवर्णों द्वारा किए गए ब्रेनवॉष का ही परिणाम है, जिसके पास जितनी ज्यादा जागीर वह उतना ही प्रतिष्ठित! इसकी जड़े इतनी गहरी हैं कि इसके खिलाफ जाने वालों को समाज हाषिए पर डाल देता है। पढ़िए ऐसी ही एक महिला की कहानी जिसके हौसले समाज की जिद, कुंठाओं से हार गए।

देवास के बरोठा गांव में वाल्मिकी समाज की सुमित्रा ने सदियों से चली आ रही जागीरी को चुनौती देते हुए इस कुप्रथा को खत्म करने के लिए चलाए जा रहे गरिमा अभियान के सहयोग से दषकों इस काम को करने के बाद अंततः अपनी डलिया ;जिसे सिर पर रखकर मैला उठाया जाता हैद्ध इस आत्मविष्वास के

साथ जला दी थी कि अब वह कभी मैला ढोने का काम नहीं करेगी। उसने बैंक से बीस हजार का लोन लेकर गांव वालों के भारी विरोध के बाद भी कपड़े की दुकान खोल ली।

सुमित्रा के साथ ही सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी लगा कि यह पहल अब प्रदेषभर के लिए मिसाल का काम करेगी। लेकिन यह लोग भारतीय सामाजिक संरचना को पढ़ने में गलती कर बैठे। जहां किसी काम के लिए जज्बे और योग्यता की जगह जाति अहम है। इसीलिए सुमित्रा की दुकान से छह माह तक एक साड़ी तो दूर एक ब्लाउज, पेटीकोट तक नहीं बिका। सुमित्रा पर दोहरी मार पड़ी एक तो उसने जिन घरों में मैला ढोने का काम बंद किया, उन्होंने गांव में उसका सामाजिक बहिष्कार षुरू करवा दिया। उसे रोजमर्रा की चीजों के लिए गांव से सामान मिलना बंद हो गया। दूसरी ओर बैंक का कर्जा उस पर चढ़ता जा रहा था।

सुमित्रा ने डबडबाई आंखों को पोछते हुए कहा , दबंगों ने फरमान जारी कर दिया था कि इसकी दुकान से कपड़े नहीं खरीदे जा सकते, क्योंकि यह ष्मषान से चुरा कर लाई है। दुकान में 100 से लेकर 300 रुपए तक की साड़ियां थीं। जिनको गांव के लोग आसानी से खरीद सकते थे। बरोठा में वाल्मिकी समाज के ही लगभग 50 घर हैं, लेकिन इसके बाद भी एक भी कपड़ा नहीं बिकने का मतलब स्पष्ट था कि सुमित्रा को गांव के जमींदारों, अगड़ों के साथ ही वाल्मिकी समाज के लोग भी दोषी मानते थे। परंपरा, समाज के कायदे तोड़ने का कुसूरवार! उस पर अगड़ी जाति को नीचा दिखाने के नाम पर गालियों की बौछार होने लगी। गांव में असल नाराजगी सुमित्रा के उस हौसले के खिलाफ है, जो उसने विधवा होने के बाद भी दिखाया ।

सुमित्रा के मैला ढोने से इंकार के केंद्र में बच्चे थे, क्योंकि उनको ही **तेरी मां मेहतरानी जैसे ताने** सुनने पड़ते थे। लेकिन दुकान बंद होने के बाद फिर से मैला ढोने के फैसले के पीछे भी बच्चे ही थे। रुआंसी होकर उसने कहा ष मेरे सामने दुकान बंद करने और डलिया उठाने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। मैं एक मां हूं और बिना बाप के बच्चों को नाराज गांव वालों का सामना करने के लिए नहीं छोड़ सकती थी।ष

इस तरह सुमित्रा की हिम्मत टूट गई। छह महीने के बाद उसने इंदौर जाकर दुकानदार से किसी तरह से गुहार लगाकर साड़ियां बीस प्रतिषत कम कीमत पर लौटाईं। अब बैंक के कर्ज का मर्ज। किसी तरह से पांच हजार चुकाए और फिर बैंक जाकर अधिकारियों को दुकान बंद होने की बात बताई। इसे अफसरों की दरियादिली मानिए कि उन्होंने कर्ज की किस्तों को उसे अपनी सहूलियत से अदा करने की छूट दे दी। पचास बरस की सुमित्रा षाजापुर जिले से यहां ब्याहकर आई थी। हालांकि मैला ढोना उसके लिए नई बात नहीं थी। अंतर इतना था कि मायके में कभी–कभी इस काम के लिए जाना होता था, जबकि यहां तो आते ही सास ने जागीर थमा दी। जिसे उसने 1990 से लगातार निभाया। अब एक बार फिर उसने अपनी जलाई गई डलिया की स्मृतियों को भुलाकर अपनी जागीरदारी संभाल ली है। सुमित्रा के पास इस समय पांच घरों की जागीरदारी है। जरा उसकी कमाई भी देखें। एक घर के उसे पचास रुपए मिलते हैं। यानि महीने भर पांच घरों का मैला उठाने के बदले में दो सौ पचास रुपए।

सरकारी छल

एक ओर सरकार का 1993 का मैला ढोने से रोकने वाला कानून कहता है कि जो भी इस काम को करवाएगा, उसे इसकी सजा मिलेगी। जिसके अंतर्गत एक साल की कैद और 2000 रुपए का जुर्माना होगा। ऐसे ही दूसरे कानून भी हैं, जो मैला ढोने पर पाबंदी लगाते हैं। तो दूसरी ओर सरकार ने कुछ समय पहले ही उन बच्चों की छात्रवृत्ति बंद करने का निर्णय लिया है, जिनके माता–पिता ने यह काम बंद कर दिया है। इससे उन लोगों में भारी असमंजस है, जो यह काम छोड़ चुके हैं या फिर छोड़ना चाहते हैं। क्योंकि ऐसा करते ही उनके बच्चों की पढ़ाई का आधार समाप्त हो जाएगा। यह विचित्र विरोधाभास है, जिसका किसी अफसर के पास कोई जवाब नहीं है।

सुमित्रा को पचास रुपए अब इस डर से लोग देने लगे हैं कि कहीं वह दोबारा काम बंद न कर दे। पहले तो उसे दस रुपए महीने के मिलते थे। चलते–चलते हमने सुमित्रा से पूछा कि क्या उसे पता है कि हमारा देष आजादी की साठवीं सालगिरह मना रहा है और कानूनन मैला ढोने जैसी कुप्रथाओं पर पूरी तरह से पाबंदी है, तो उसने कहा, ष कैसी आजादी, हम तो अभी भी गुलाम हैं। ष यह अकेली सुमित्रा के हौसलों के टूटने की कहानी नहीं है। पूरे प्रदेष में मैला ढोने से विद्रोह करने वालों की कमोबेष यही दषा है। मानवाधिकार आयोग के एक सर्वे में प्रदेष में मैला ढोने वालों की संख्या सात हजार तक बताई गई है। सरकार, उसके अफसर ऑफ द रिकार्ड तो इसे स्वीकार करते हैं, लेकिन ऑन द रिकार्ड नहीं। क्योंकि यह संविधान प्रदत्त अधिकारों का खुलेआम उल्लंघन है। इसलिए जब वह मानती ही नहीं कि मैला ढोया जाता है, तो वह इनके लिए करेगी क्या। सीहोर, होषंगाबाद, पन्ना, हरदा, षाजापुर, मंदसौर, राजगढ़ के साथ ही भिंड, टीकमगढ़, उज्जैन समेत 13 से अधिक जिलों में मैला ढोने का काम करने वाला समाज बड़ी संख्या में है। इनकी अपनी आबादी इतनी अधिक नहीं है, जो किसी वोट बैंक के दायरे में आती है। यही कारण है कि वाल्मिकी और हेला दोनों ही समुदाय के लोग सामान्य नागरिक अधिकारों से भी वंचित हैं। उन्हें प्रतीक्षा है, संविधान के उस वादे के यकीन में बदलने की जिसमें लोक कल्याणकारी राज्य का वादा किया गया है।

क्यों नहीं मिले वाल्मिकियों से राम!

सामाजिक बहिष्कार को समझने के लिए मंदसौर जिले का भील्याखेड़ी गांव एक उपयुक्त उदाहरण है। हिंदू धर्म में छुआछूत और अस्पृश्यता के हजारों उदाहरणों में से एक है भील्याखेड़ी की कहानी। जहां वाल्मिकियों को पीढ़ियों से मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं है। मंदसौर से 55 किमी दूर भील्याखेड़ी में दलितों को उनके आराध्य श्रीराम के मंदिर में जाने की मनाही है। अस्सी बरस के बुजुर्ग कहते हैं कि उनने तो दूर उनके दादा–परदादा ने भी आज तक कभी इस मंदिर की दहलीज पर पांव नहीं रखे।

कच्ची पगडंडियों और हरे–भरे पेड़ों के बीच बसे इस गांव की आबादी सात सौ के भीतर ही है। बीते 26 जून को यहां दलित नेता जंगीबाबू तवंर और प्रषासन ने भारी पुलिस बल की मौजूदगी में दलितों को मंदिर में प्रवेष दिलवाया था। लेकिन उस दिन के बाद आज तक किसी दलित की हिम्मत नहीं हुई कि भगवान के दर्षन कर सके। प्रषासन ने दलितों को मंदिर में प्रवेष दिलाने के दिन समाज के सवर्ण तबकों को विष्वास में लेने और सामाजिक सद्भाव का कोई प्रयास नहीं किया। इस बात का पता इससे चलता है कि दलितों के मंदिर प्रवेष के दौरान अधिकांष सवर्ण पुरुष घरों पर नहीं थे। कुछ डर से तो कुछ विरोध के चलते अपने घरों से नदारद थे। स्पष्ट है कि दलितों का मंदिर में प्रवेष महज एक रस्म अदायगी था। उसे सच्चे अर्थों में तामील करने की नीयत किसी की नहीं थी। दलित युवक भंवरलाल ने बताया कि उस दिन तो पुलिस के डर से किसी ने कुछ नहीं कहा , लेकिन पुलिस के जाने के बाद हमारा उत्पीड़न षुरू हो गया। इस गांव में बलाई, सूर्यवंषी और वाल्मिकी समाज के 25 परिवार हैं, जिनके बुजुर्गों को याद नहीं कि उनके पिता ने कभी गांव के मंदिर की सीढ़ियों पर भी पांव रखे हों। लेकिन इनकी नई पीढ़ी यह अन्याय बर्दाष्त करने को तैयार नहीं है।

भंवरलाल ने सरकार के उक्त प्रयास के पहले भी कई बार मंदिर में प्रवेष का प्रयास किया, जिसके बाद दबंगों द्वारा उसकी जमकर पिटाई भी की गई ,लेकिन वह फिर भी हार मानने को तैयार नहीं

है। भंवरलाल ने बताया कि हम हर हाल में मंदिर में पूजा–अर्चना को सुलभ बनाना चाहते हैं। अब चाहे इसकी कीमत कुछ भी हो। दूसरी ओर गांव में माली, जाटव और गायरी समाज के लोग हैं, जो गांव में निर्णायक भूमिका में हैं, दलितों के मंदिर में प्रवेष के सवाल पर बिफर जाते हैं। यह लोग किसी भी कीमत पर इस मामले में बात करने को तैयार नहीं हैं। बड़ी मुष्किल से बात करने को राजी हुए चंपालाल चौधरी कहते हैं '' सारा विवाद झूठा है, कहीं कोई भेदभाव नहीं है। हम लोग क्या अत्याचार करेंगे, हम पर तो खुद ही मंदिर को लेकर मुकदमें चल रहे हैं। '' चंपालाल के पास इस बात का कोई उत्तर नहीं है कि जब दलितों के साथ विवाद नहीं है, तो फिर मुकदमे किस बात के चल रहे हैं।

जाहिर है मुकदमे मंदिर में प्रवेष को लेकर होने वाले विवाद के ही हैं। जब से गांवों के जन–जीवन में राजनीतिक दलों का सीधा प्रवेष हुआ है। वहां की समस्याओं ने पेचीदा स्वरूप ले लिया है। ऐसे में स्वाभाविक है कि अब कोई विवाद पंच परमेष्वर की तर्ज पर तो सुलझने वाला नहीं है। हां विवादों को उलझाए रखने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। दलितों के सदियों बाद इस गांव में मंदिर प्रवेष के बाद आलम यह है कि गांव के सवर्णों ने दलितों के लिए कदम–कदम पर नई परेषानियों की फसल उगा दी है। दलितों के बच्चों को मध्यान्ह भोजन के दौरान घर से ही बर्तन लाना होता है। सबसे बाद में उनके बच्चों को भोजन मिलता है। उनको स्कूल में सबसे पीछे, सबसे अलग बैठने के लिए कहा जाता है। मटके से पानी पीने की इजाजत नहीं है। यहां तक कि उनको सवाल पूछने की अनुमति भी दबंगों के बच्चों के बाद ही होती है। वाल्मिकी समुदाय के लोगों ने यहां पर मैला ढोने का काम काफी समय पहले ही छोड़ दिया था। इसके बाद भी उनके साथ भंगी, मेहतर जैसे अपमानजनक संबोधन हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृष्यता को किसी भी रूप में लागू करने को दंडनीय अपराध माना गया है। आज आजादी की आधी सदी के बाद भी यह गांव–गांव में मौजूद है। जिंदगी के अंतिम पड़ाव पर अस्सी बरस से अधिक के हो चुके दलित रामलाल का दर्द विचलित करने वाला है ष्ष मेरा जन्म गुलाम भारत में हुआ, उसके बाद आजादी ने उम्मीद जताई कि षायद भगवान से मिलना संभव हो सके। लेकिन अब अंतिम समय में लग रहा है कि मैं फिर गुलाम हो गया हूं। मेरी अंतिम इच्छा है कि मैं भगवान राम के दर्षन करते हुए इस दुनिया से विदा लूं, लेकिन लगता नहीं यह हो सकेगा। ष्ष यह अकेले भील्याखेड़ी की कहानी नहीं। पड़ोसी जिले नीमच के पीपल्या रावजी गांव में भी वाल्मिकियों को मंदिर में जाने की मनाही है। वाल्मिकी समाज की बच्ची रीना कहती है कि जब हम दूसरे बच्चों को सुबह–सुबह विभिन्न अवसरों पर मंदिर जाते देखते हैं, तो हमारा मन भी करता है, कि हम भी नहा धोकर मंदिर में दर्षन के लिए जाएं। लेकिन गांव की ओर से इसकी अनुमति नहीं है। देवास में भी अनेक स्थानों पर ऐसे प्रकरण हैं। इस तरह देखें तो समूचे मालवा में ऐसे मामले बड़ी संख्या में हैं, जिन पर प्रषासन कभी भी संजीदगी से कार्रवाई नहीं करता है।

8. हेला–वाल्मीकि समुदाय की सामाजिक स्थिति

हेला–बाल्मीकि समुदाय की सामाजिक स्थिति कम से कम अस्पृश्यता के मामले में तो वैसी ही है, जैसी कि राजा–महाराजाओं के समय में थी। इसमें सबसे क्रांतिकारी परिवर्तन उस समय ही आया जबकि इस देश में अंग्रेजों ने अपना राज कायम किया। यह बात कड़वी लेकिन सच है कि उस समय पहली बार किसी भी रूप में कम से कम न्याय का एक रूप तो दलितों को देखने को मिला।

दलितों विशेषकर अस्पृश्य दलितों वाल्मिकी और हेला समुदायों को लगा कि उनकी स्थिति में तेजी से सुधार होगा, लेकिन ऐसा हो नहीं सका। आजादी के बाद एक बार फिर देश की बागडोर लोकतंत्र के बहाने पुराने राजाओं और धनिकों के हाथों में आ गई। इसलिए जो सुधार दलितों की स्थिति में होने चाहिए थे, वह हो नहीं सके। उनकी शिक्षा में कुछ हद तक सुधार हुआ, लेकिन अन्य समाजों के साथ उनके संबंधों में कहीं भी सुधार देखने को नहीं मिला। भारतीय समाज की आचारसंहिता मनुसंहिता के अनुसार मुख से ब्राम्हण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरू से वैष्य और पैरों से शुद्रों का जन्म माना गया है। इस विवार के अनुसार ही श्रमविभाजन किया गया और वर्णव्यवस्था बनाई गई। वर्णव्यवस्था को हिदूधर्म की रीढ़ बनाकर मनु ने दलितों का जीवन नर्क बना दिया। डा. अंबेडकर के अनुसार वर्ण व्यवस्था से ही जातिभेद की उत्पत्ति हुई है।

हिंदू समुदाय में बाल्मीकि समुदाय की जो स्थिति रही, वही स्थिति हेला बिरादरी की मुस्लिम समुदाय में थी। आजादी से पहले हेला बिरादरी के लोग पूर्णतः सफाई का कार्य करते थे। आज भी इस जाति के लोग मलमूत्र सफाई का कार्य बाल्टी में मल को हाथों से भर कर और उसे सिर पर रखकर करते है। आजादी से पहले हेला बिरादरी के लोगों के संबंध उच्चवर्गीय हिंदू व मुस्लिम समुदाय के साथ नहीं थे। विद्यालयों में इनके बच्चों को प्रवेष नहीं मिलता था। इन्हें कुरान व अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का कोई अधिकार नहीं था। पहले भी नाई उनके बाल नहीं काटते थे और आज भी मप्र विशेषकर मालवा में नाई इनके बाल काटने से पहरेज करते हैं। पहले गांव में से चप्पल पहनकर नहीं जा सकते थे, अपनी बारात घोड़ी पर नहीं ले जा सकते थे । आज चप्पल पहनने का हक तो है, लेकिन शाजापुर में दलितों की बारात घोड़ियों से निकालने पर दलितों पर हमले की खबरें लगातार आ रही हैं। हेला और वाल्मिकी के स्पर्श से सवर्ण महिलाएं खुद को अपवित्र मानती हैं। दोनों ही समुदायों पर आज भी अनेक इस प्रकार के प्रतिबंध हैं। इस वर्ग की महिलाएं सार्वजनिक रूप से भाषण नहीं कर सकतीं, उच्च वर्ग के युवा कभी भी उनका अपमान कर सकते हैं, लेकिन इसका विरोध करने पर न केवल उनका अपमान किया जाता है, बल्कि हत्या तक कर दी जाती है।

आजादी से पहले हेला बिरादरी के लोग मुफ्त में प्राप्त बंजर जमीन पर झोपड़ी बनाकर रहते थे। इनकी अपनी एक बस्ती होती थी, जो गांव, शहर से दूर अधिकांषतः पष्चिम दिषा में होती थी। सफाई कामगारों के निवास का क्षेत्र भंगियों का मोहल्ला या भंगियों की बस्ती कहा जाता है। श्री श्यामलाल लिखते हैं कि अधिकांषतः ''सफाई कामगार गांव शहर के बाहर बसे होते हैं और वहॉ खुली नालियों में गंदगी युक्त पानी व अन्य गंदगी बहती नजर आती है।'' यही स्थिति आज भी हेला बस्तियों के साथ जुड़ी हुई हैं।

हेला बिरादरी का मुस्लिम, वाल्मीकि समुदाय के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि हेला बिरादरी के मुस्लिम व बाल्मीकि समुदाय के आपस में कोई संबंध नहीं थे। जबकि वर्तमान में सिर्फ व्यावसायिक संबंध ही हैं। कुछ परिवारों ने स्वीकार किया है कि पूर्व में मुस्लिम समुदाय के लोगों का इनके यहां आना जाना था। कुछ परिवारों ने स्वीकार किया है कि लगभग तीन दशक पहले तक मुस्लिम समुदाय के लोगों के द्वारा इन्हें शादी ब्याह व अन्य कार्यक्रमों में सिर्फ सफाई कार्य हेतु बुलाया जाता था और घर का बचा खाना और जूठन इन्हें उपहार के तौर पर दिया जाता

था। यह भी पता चलता है कि वर्तमान में मुस्लिम समुदाय में कुछ परिवार हेला बिरादरी के लोगों को आमंत्रित तो करते हैं, परंतु उन्हें मुस्लिम समुदाय के लोग अपने साथ भोजन नहीं कराते हैं। जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि मुस्लिम समुदाय में भी व्यावहारिक रूप में अस्पृष्यता व्याप्त है। साक्षात्कारों में यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आती है कि अतीत में हेला बिरादरी का वाल्मीकि समुदाय के यहां आना–जाना नहीं था और न ही वर्तमान में है। अतः वे व्यावसायिक बातें अपने तक ही सीमित रखते हैं व वर्तमान में भी एक दूसरे के घर आना–जाना नहीं करते व हेला बिरादरी के लोगों को शादी ब्याह व अन्य कार्यक्रमों में भी आमंत्रित नहीं करते हैं।

हमारे सामंती ढांचे वाले समाज में हेला, बाल्मिकी बिरादरी को षिक्षा लेने के अधिकार से वंचित रखा गया था, जो अब कुछ हद तक दूर हो गया है, लेकिन समुदाय के परिवारों ने बताया कि दो दशक पहले तक उन्हें विद्यालयों में प्रवेष के समय अनेक कठिनाइयां आती थीं। हेला बिरादरी का होने के कारण पहले तो इन्हें विद्यालयों में प्रवेष ही नहीं दिया जाता था। और जिन विद्यार्थियों को प्रवेष मिल जाता था, उन्हें अपने घर से बैठने के लिए टाट–पट्टी लानी पड़ती थी। इतना ही नहीं बल्कि छोटी–छोटी बातों पर इतनी बुरी तरह से पीटा जाता था कि कई बार बच्चे अधमरे हो जाते थे।

जारी है पर्दा प्रथा

पर्दा प्रथा का चलन तीन पीढ़ी पहले भी था और आज भी कायम है। तीन पीढ़ी पहले ऐसे समुदाय की मस्जिद नहीं थी, वे मुस्लिम समुदाय की मस्जिद में ही चप्पल–जूते रखने की जगह पर नमाज पढ़ते थे। शोधकर्ता को दिए गए साक्षात्कारों में समुदाय के लोगों ने बताया कि पूर्व में मुस्लिम समुदाय की मस्जिद में उन्हें बराबरी से नमाज पढ़ने की इजाजत नहीं थी अतः दालान में नमाज अदा करनी होती थी। वर्तमान में इस बिरादरी की मस्जिद मुस्लिम समुदाय की मस्जिद से अलग है। शहरों में मस्जिद के अंदर किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जाता है, लेकिन गांवों में आज भी भेदभाव व्याप्त है। जहां यह भेदभाव नहीं है वहां भी हेला एक ही पंक्ति में खड़े होकर नमाज तो पढ़ सकते हैं, लेकिन रमजान के पवित्र महीने में एक साथ अफतारी (षाम को नमाज पढ़ने के बाद लिया गया पहला भोजन) करने का बराबरी का व्यवहार उन्हें आज भी नसीब नहीं हुआ। मंदसौर और नीमच, देवास में आज भी अनेक स्थानों पर नाई इनके बाल नहीं काटते हैं।

अध्ययन के दौरान स्पष्टतौर पर यह बात उभर कर आई है कि कुछ दशक पहले तक हेला समुदाय को कुरान व अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का अधिकार नहीं था। इसके साथ ही मुस्लिम समुदाय के बच्चों से दूर बैठाकर व मौलवी इन्हें डंडो आदि से पीटा करते थे। अब हालांकि इस दशा में सुधार हुआ है।

आवास

वर्तमान में ज्यादातर परिवार कच्चे मकानों में रहते हैं। जिनमें से कुछ मकान नगर निगम द्वारा बनाकर दिए गए हैं। चूँकि पहले जमींदारों द्वारा मुफ्त में दी गई जमीन पर ही मकान बनाए जाते थे। अतः सभी के मकान स्वयं के होते थे। परिवार बढ़ने के कारण मकान के हिस्से होते गए। आज स्थिति यह है कि ज्यादातर परिवार में पूर्व से लेकर वर्तमान तक इनके पास अपने मकानों की रजिस्ट्री नहीं है क्योंकि आजादी से पहले इन्हें संपत्ति रखने का अधिकार नहीं था। साफ–सफाई का कार्य करने के कारण यह बिरादरी शहर व गांव से दूर व पृथक बस्ती में बसी है। वर्तमान में भी इस बिरादरी की बस्ती शहर व गांव से दूर होती है, जिसे हेलावाड़ी के नाम से जाना जाता है। जहॉ गैर हेला मुस्लिम समुदाय व हिन्दू समुदाय के कोई परिवार निवास नहीं करते।

सामाजिक–आर्थिक परिदृष्य

(अ) सामाजिक परिदृष्य

षिक्षा

अध्ययन में यह खेदजनक तथ्य सामने आया कि सदियों की हीनता के कारण हेला–वाल्मिकी समुदाय अपने को सफाई कार्यों के योग्य मानते हैं। उनके भीतर आगे बढ़ने चाह अभी भी दबी हुई है। मैला ढोने, सफाई कार्य को व्यवसाय के रूप में अपनाने का मुख्य कारण उनकी अषिक्षा ही है, वर्तमान में अधिकांष पारिवारिक सदस्य अषिक्षित है।

सफाई का अभाव

हेलावाड़ी समेत दोनों समुदायों के निवास स्थान संकरे और खुली नालियों के कारण गंदगी का केंद्र बने रहते हैं। यहां सफाई की कमी बीमारी का बड़ा कारण बनती है। यह एक विचित्र सी बात है कि खुद दुनियाभर की गंदगी को दूर करने वाले लोग इस तरह से गदंगी के बीच निवास करते हैं। जहां बहुत थोड़े से प्रयासों से बीमारियों से बचा जा सकता है। ऐसा इनके सदियों से चले आ रहे निवास के तरीकों और नए निर्माण करवाने पर दूसरे समाज की ओर से मिलने वाले तानों और मदद में कमी के कारण भी होता है।

दोनों ही समुदायों में अधिकांष सफाई कार्य महिलाएं ही करती हैं। वर्तमान में सफाई कार्य में कमी के कारण कुछ महिलाएँ कचरा बीनने, नाली–मोहरी धोने जैसे कार्यों में भी पुरूषों की मदद करती हैं, सफाई कार्य से प्राप्त आय को अपने परिवार पर ही खर्च कर देती है। अनेक परिवारों में महिलाएं ही घर चलाती हैं। फिर भी परिवार में इनका मुख्य स्थान नहीं होता। महिलाएं पूर्णतः धार्मिक प्रवत्ति की होती हैं। सफाई कार्य के दौरान इन्हें हाथों द्वारा मैला उठाकर सिर पर टोकरी रखकर फेंकना होता है। इस तरह इन्हें अधिकांषतः ठंडे पानी में रहना पड़ता है। साथ ही सफाई कार्य करते समय ये पूर्णतः सावधानी भी नहीं बरततीं। जिसके कारण अधिकांषतः ये महिलाएं दमा, खुजली जैसी बीमारियों से पीड़ित रहती हैं। अज्ञानता व गरीबी के कारण ये टीबी जैसी बीमारियों की षिकार हो जाती हैं। इसके बावजूद भी गरीबी के कारण ये महिलाएं अपना इलाज नहीं करवा पातीं। साथ ही बीमारी से संबंधित सावधानी भी नहीं बरतती जिसके कारण परिवार के अन्य सदस्य भी प्रभावित होते हैं।

कुप्रथाएं

सामान्य हिंदुओं की तरह ही वाल्मिकी समाज में भी विवाह–विच्छेद को बुरा माना गया है। दूसरी ओर हेला समाज में बहुपत्नी प्रथा को स्वीकृति प्राप्त होने के साथ ही पत्नियों को बिना उचित कारण छोड़ने का रिवाज भी है, जिसके कारण अनेक महिलाएं बच्चों के साथ लगभग भुखमरी की स्थिति में हैं। कई केस स्टडी में यह भी देखा गया है कि मैला ढोने के काम से घर चलता रहे, इसलिए भी हेला समाज के लोग दो या अधिक विवाह कर लेते हैं।

चूंकि मुस्लिम समुदाय में पुरूष चार पत्नियां रख सकता है। फलस्वरूप हेला बिरादरी में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित है और इसका प्रतिकूल प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व के विकास पर भी पड़ता हैं। बिना विश्राम निरंतर श्रम के साथ संतुलित आहार के अभाव में कुपोषण और अधिक संतानोत्पत्ति के कारण ये असमय ही बीमार होने लगती हैं। परिवार नियोजन की बात इनके यहां नहीं स्वीकार की

जाती, क्योंकि बच्चों की संख्या को ये श्रमिक हाथों या काम करने वाले अतिरिक्त हाथों की संख्या मानते हैं।

(ब) आर्थिक परिदृष्य

तरीके बदले पर काम वही, कमाई कुछ नहीं

गंदगी से जुड़े पेषे में लगे होने के कारण मुसलमान हेला और हिंदू वाल्मिकियों को अस्पृश्य माना जाता है। मुस्लिम समुदाय में तो इन्हें सिर्फ मैला उठाने का काम ही दिया जाता है। जिसके कारण इनकी आर्थिक स्थिति भी कमजोर रहती है और इसके कारण इनका सामाजिक परिदृष्य भी प्रभावित होता है। इस बिरादरी का मुख्य व्यवसाय सफाई कार्य है। सीवरेज प्रणाली लागू होने के कारण दोनों ही समुदायों को वहां काम मिल गया। इस तरह से अनेक स्थानों पर मैला ढोने का काम कम तो हुआ है, लेकिन उनको आज भी अपवित्र ही माना जाता है। कहने का आशय यह है कि दोनों समुदायों का मूल काम वही बना है, गंदगी की सफाई।

काम के घंटे व स्वास्थ्य

अधिकांश परिवार जो मैला ढोने का काम करते हैं,वे टीबी जैसी दूसरी बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। क्योंकि इनके पास मल उटाते समय दुर्गध से बचने का कोई उपाय नहीं होता है। किसी को सांस की बीमायिों ने घेरा हुआ है, तो किसी को अस्थमा जैसी घातक बीमारी है। महिलाओं को काम करने के दौरान सर पर मैला ढोने के कारण श्वास की परेशानियां अधिक होती हैं, क्योंकि वे आमतौर पर मुंह पर पट्टा आदि नहीं बांधती हैं। महिलाओं को रोजाना कम से कम 4 से 5 घंटे मैला ढोने, उसे फेंकने के काम में लगाने होते हैं। सबसे अधिक परेशानी बरसात के दिनों में होती है, क्योंकि भरी बरसात में मैला उठाना और फिर उसे गांव से बाहर ले जाकर फेंकना मुश्किल काम होता है।

कर्ज में डूबे हुए

दोनों ही समुदायों में आमदनी के नाम पर जागीर से होने वाली आय ही होती है। इस कारण गांव के सूदखोर इनसे निरंतर बेगार करवाते रहते हैं और भारी ब्याज पर रोजमर्रा की जरूरतों और शादी–ब्याह के समय पैसे देते हैं। परिवार में कमाने वाले सदस्यों की भारी कमी है। अशिक्षा के कारण सरकारी नौकरियों के लिए इनके दरवाजे बंद हैं। नगर–निगम और नगरपालिकाओं की नौकरियां ही इनकी आजीविका का एकमात्र साधन हैं।

शराबखोरी

दोनों ही समुदाय के सदस्य भारी मात्रा में शराब का सेवन करते हैं। शादी–ब्याह के मौके पर धूम्रपान व मद्यपान आवश्यक बुराई बन गया है। जिस पर इस बिरादरी के लोग अपनी सारी आय खर्च कर देते हैं।

9. निष्कर्ष

1. आजादी से पहले शिक्षा इनके दायरे से बाहर थी और उसके बाद भी इस हेला–वाल्मिकी में षिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया गया।
2. महिलाओं की अपेक्षा पुरूषों में साक्षरता दर अधिक थी।
3. वर्तमान में बच्चों को निर्धारित आयु से अधिक आयु में ही सही लेकिन विद्यालयों में भेजने का काम शुरू हो गया है।
4. अधिकांष स्त्री–पुरूष सफाईकार्य में लगे हैं। जिसका मुख्य कारण अषिक्षा है।
5. मैला ढोने के काम में महिलाएं अधिक संख्या में कार्यरत हैं।
6. षिक्षा का स्तर बढ़ाने से मैला ढोने का काम बंद करवाया जा सकता है।
7. गरीबी और बेकारी के कारण दोनों ही समुदाय के बच्चे बड़ी कठिनाई से 10–12वीं तक की षिक्षा प्राप्त कर पाते हैं।
8 इस बिरादरी के लोगों द्वारा निम्न स्तर के सफाई कार्य के अलावा अन्य कोई कार्य नहीं करना, सफाई कार्य में लगे रहने का एक प्रमुख कारण है।

परिवर्तन जो दिखे

अध्ययन के दौरान हेलाओं के बारे में कुछ अनूठे तथ्य भी मिले। राजस्थान के हेला समाज पर शोध करने वाले प्रो. श्यामलाल ने बताया है कि उच्च वर्ण किस प्रकार निम्न वर्ण की संस्कृति को स्वीकार करते हैं, इस प्रवृत्ति की रोचक जानकारी दी है जो इस प्रकार हैः–

प्रो. श्यामलाल लिखते हैं कि यद्यपि धर्मांतंरण करने वाले उच्च जाति के लोग अपने नये समुदाय के साथ जैसे– तैसे एकरूप हो गए फिर भी धर्मांतरण के पष्चात उच्च जाति के ब्राह्मण और मुसलमान अपने पारंपरिक धार्मिक प्रथाओं, आदतों, विष्वासों और खानपान को बनाये रखे हुए हैं। कभी –कभी भंगियों को किसी अवसर पर सुअर और बकरे का मांस खाना पड़ता है,उस अवसर पर धर्मांतरण करने वाले मुसलमान और ब्राह्मण मांस खाने से परहेज करते हैं। इसके बावजूद भी मुसलमानों और ब्राह्मणों को हर लिहाज से अपने बराबरी का भंगी ही मानते हैं। धर्मांतरित मुसलमानों का एक दूसरा वंषपरंपरागत रिवाज है –नमाज अदा करना जो भंगियों में नहीं पाया जाता।

जिसे धर्मांतरित मुसलमान अपने उच्च जाति के होने का संकेत समझते हैं, परंतु भंगी होने की क्रमिक प्रक्रिया में मुसलमानों को भंगी की मान्यता प्राप्त हुई है। भंगी होने से हिंदू जातिगत क्रमिक संरचना में धर्मांतरित व्यक्ति का दर्जा कम ही नहीं होता,बल्कि इस प्रक्रिया में वह भंगी का दर्जा भी अर्जित करने में सफल होता है। परिणामस्वरूप धर्मांतरित मुसलमान अन्य भंगियों के साथ वैवाहिक संबंध जोड़ने में भी कामयाब हुए हैं। इस संबंध से मुसलमानों ने अपना सामाजिक उच्च दर्जा गंवा दिया और जिन भंगियों से वे पहले खाना–पीना स्वीकार नहीं करते थे, उनके साथ बराबरी के भंगी बन गए। हेला बिरादरी के साथ हुए अत्याचारों के बारे में कंवल भारती ने मुस्लिम समाज में मजलूम नामक अपने आलेख में कहा है कि इस्लाम दासता का समर्थक नहीं है पर दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि दलित मुसलमानों के साथ अषरफ मुसलमान रोटी–बेटी व्यवहार तो दूर, मानवीय संबंध भी नहीं रखते हैं। ये दलित मुसलमान अधिकांषतः नषे की लत के षिकार होते हैं। पहले गरीबी

और फिर नषे की आदत ने इस बिरादरी को आगे बढ़ने ही नहीं दिया। हालांकि वर्तमान में इस बिरादरी के लिए मुस्लिम समुदाय के दृष्टिकोण में पहले से सफाई कार्य के अलावा अन्य छोटे –छोटे व्यवसाय अपनाने के संदर्भ में कुछ परिवर्तन जरूर आया है, लेकिन व्यवहाारिक धरातल पर उच्च वर्गीय मुसलमानों का उनके प्रति जो आचरण हैं, उनमें कोई परिवर्तन नही आता।

10. शोध पर सुझाव

1. सामाजिक भेदभाव के विरोध में आवाज उठाने के लिए आवष्यक है कि मुस्लिम समुदाय स्वयं आगे आए तथी निष्चित रूप से इस बिरादरी का जीवन स्तर सुधरेगा। जातिगत छुआछूत और जातिगत भेदभाव सामाजिक–आर्थिक शोषण के शक्तिषाली साधन है। इसे समाप्त करने के लिए हेला बिरादरी की आर्थिक–उन्नति हेतु क्रांतिकारी कार्यक्रम को लागू करना होगा और दूसरी तरफ इस्लाम के मानवतावादी सिद्धांतों के प्रचार–प्रसार व व्यवहारिकता पर जोर देना होगा।
2. इस बिरादरी में समस्याओं के हल के लिये जाति पंचायतों का निर्णय मान्य होता है अतः समस्या से संबंधित सरकारी नियमों की उन्हें जानकारी नहीं होती। आवष्यक हो जाता है कि अदालतों के नियमों का पालन करने के लिये जाति पंचायतों को सरकारी तौर पर बाध्य किया जाना चाहिए।
3. सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि ये लोग मज़हबी षिक्षा पर ज्यादा जोर देते हैं व उलेमाओं का कहना मानते हैं इसलिए आवष्यक है कि मदरसों का आधुनिकीकरण कर उन्हें आधुनिक षिक्षा के साथ जोड़ा जाए व उलेमाओं की गोष्ठी आयोजित कर उन्हें आधुनिक षिक्षा के महत्व को समझाया जाना चाहिए।
4. ग्रामीण हेला बिरादरी के व्यक्तियों के पास कृषि भूमि का पूर्णतः अभाव है, अतः उन्हें कृषि के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध कर कृषि कार्य से संबंधित जानकारी, प्रषिक्षण व सुविधाएं दी जानी चाहिए। साथ ही उत्पादित फसलों को बाजार उपलब्ध कराने हेतु सरकार को स्वयं सामने आना चाहिये ताकि बिचौलिये न पनप सकें और इन्हें भी फसलों का पूर्ण मूल्य प्राप्त हो सके।
5. योजनाओं की स्वीकृति हेतु एक निष्चित समयावधि निर्धारित की जानी चाहिए ताकि समय पर ऋण प्राप्त हो सके। साथ ही योजनाओं की स्वीकृति हेतु बहुत अधिक कागजी औपचारिकताएं पूर्ण न कराई जाएं तथा आवष्यक कागजी औपचारिकताओं को पूर्ण करने हेतु सरकारी खर्च पर सरकारी व्यक्ति को नियुक्त किया जाना चाहिए।
6. उच्चवर्गीय मुस्लिम समुदाय के लड़के–लड़कियों द्वारा इस बिरादरी के लड़के–लड़कियों से विवाह करने पर सरकार सम्मान करे।

11. उपसंहार

अंग्रेजी राज में देश में दो तरह के गुलाम रहा करते थे। एक तो वे समस्त लोग जो भारत देश के दायरे में आते थे, और दूसरे वे सब जो कि उन लोगों की गुलामी किया करते थे, जो पहले वाले थे। देश में दलित, आदिवासियों की संख्या करोड़ों में है, जो अस्पृश्यता, तिरस्कार और भुखमरी के बीच पूरी जिंदगी बिता देते हैं। अछूत होने का दर्द, एक अछूत के सिवा कोई दूसरा नहीं अभिव्यक्त कर सकता। जब मनु ने वर्णव्यवस्था का आविष्कार किया और उनके सेवकों ने उसके पालन के लिए समाज की खोज की उसके बाद से अब तक जो कोई भी व्यक्ति भारत की मिट्टी पर जन्मा है, या तो वह सवर्ण है, या फिर अछूत ! इस देश में तीसरी कोई जाति ही नहीं है। यहां सबसे बुरा है, अछूत होना। कुकर्मी चले जाएंगे, तमाम जितने तरह के कथित पाप निषेध किए गए हैं, उनको करने वालों को समाज स्वीकार कर लेगा, लेकिन वे कभी सवर्णों के साथ खड़े नहीं हो सकेंगे, जो कि अछूत जाति में पैदा हो गए। वाल्मिकी समुदाय जिसे उप्र और पंजाब तरफ **चूहड़ा** कहा जाता है, से आने वाले कवि, लेखक, चित्रकार ओमप्रकाश वाल्मिकी जूठन में लिखते हैं कि ***मेरे पिताजी मुझे खूब पढ़ाना चाहते थे, ताकि मुझे नौकरी मिल जाए और मेरी जाति सुधर सके, उन्हें नहीं मालूम था कि अछूत की जाति कभी नहीं सुधर सकती।***

अनेक सवर्ण प्रगतिशील विचारों के लोगों को विश्वास है कि आर्थिक प्रगति इस भेद को मिटा सकती है, लेकिन यह कोरी कल्पना है। इसीलिए अंबेडकर समेत दलितों का एक बड़ा पक्ष यह सोचता था कि आजादी से पहले दलितों के सवाल, उनके अधिकारों का मसला तय हो जाना चाहिए था। ज्योतिबा फुले इसीलिए उन महार सैनिकों का अभिनंदन करते हैं, जिन्होंने 1857 के विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों की मदद की थी। फुले कहते भी हैं कि दलितों को अंग्रेंजों के आगमन से अपने जीवन में प्रकाश आता दिखा था। इसी तरह किसी दलित लेखक ने लिखा भी है कि **अंग्रेज भारत में देर से आए, लेकिन बहुत जल्दी चले गए** (दैनिक हिंदुस्तान 8 जनवरी 2007)। यह बात बहुत से सवर्ण चिंतकों को विचलित करती रही है, लेकिन जब हम दलित मानस से इस पर विचार करते हैं, तो बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि दलितों के लिए राजा–रजवाड़े वाली व्यवस्था और आजादी के बाद वाली व्यवस्था में बहुत अंतर नहीं है। एक आरक्षण की बात को छोड़ दीजिए तो हमारे सवर्ण समाज ने उनको कहीं और जगह नहीं दी। अंग्रेजी राज दलितों को इसलिए लुभाता है, क्योंकि उसने उनको सदियों की उच्चवर्गीय गुलामी से थोड़ी राहत दिलवाई थी। अंग्रेजी राज में दलितों को लगा था कि अब किसी तरह के कानून का शासन तो है। वरना पहले तो उनको स्कूल के सामने से गुजरने, पंडितों की बातें सुनने और खुद शिक्षित हो जाने (एकलव्य) पर अपना अंगूठा तक देकर कथित पाप करने की कीमत चुकानी पड़ती थी।

मजेदार बात यह है कि हमारी पाठ्यपुस्तकों में गुरु द्रोण को आदर्श शिक्षक के रूप में दिखाया जाता है और अर्जुन को एक योग्य शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के सारे प्रयास कर लिए। लेकिन एकलव्य का अंगूठा द्रोण ने आखिर उससे क्यों मांगा? क्या इसलिए कि वह अर्जुन को वचन दे चुके थे! यह तो तर्कसंगत उत्तर नहीं माना जा सकता। दुर्भाग्य से इस देश में दलितों के साथ यही बराबर किया जा रहा है। लाखों एकलव्यों को सवर्णों की पक्षपतापूर्ण शिक्षा व्यवस्था निगल जाती है। रीना जैसे बच्चों की संख्या अनगिनत है, जिनके सपने को सामंती मास्टर निगल जाते हैं। सुमित्रा बाई जैसी साहसी महिलाओं को समाज किस तरह से घुटने टेकने पर मजबूर कर देता है, यह हम पहले इस शोध में दिए गए विवरणों में देख चुके हैं। दलितों में भी सबसे खराब स्थिति में वाल्मिकी और हेला जैसे समुदाय है, क्योंकि इनके बारे में यह माना जाता है कि यह गंदा काम करते हैं, लेकिन यह नहीं सोचा जाता कि किसके लिए करते हैं। मैला ढोने को अगर एक काम भी मना जाए, तो क्या इससे बड़ी मानवीय सेवा कोई दूसरी हो सकती है, क्या यही काम

ब्राहमण परिवारों के युवा कर सकते हैं,निश्चित रूप से नहीं जब तक कि उनके जीवन दांव पर नहीं लगे हों। हेलाओं और वाल्मिकियों को सदियों से यह सब करने के लिए विवश किया जाता रहा है। आज 2008 की बात करें तो जो यह काम छोड़ चुके हैं, उनके लिए सवर्णों ने अपनी ओर से हर संभव परेशानी देने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। तराना के अनवर अली बताते हैं कि हम मुसलमानों में इस्लाम को इस तरह से प्रचारित किया जाता है कि यह बराबरी वाला मजहब है, लेकिन दुखद है कि हमको मस्जिदों में जाने की, सबके साथ इबादत की मनाही है। इससे तंग आकर हमने अपने लिए अलग मस्जिदों तक का निर्माण करवा लिया है। अनवर की बात में पीड़ा है तराना का यह नौजवान यहां आने जाने वाले हर पत्रकार से हेलाओं के बारे में खबर लिखने और उनकी समस्याओं पर रिपोर्टिंग का आग्रह करता है। उसे शायद यह नहीं मालूम कि अब अखबार में टीजी नामक ऐसा यंत्र आ गया है, जो खबर को अपने ही एक विचित्र पैमाने पर मापता है।

इस फैलोशिप ने मुझे किस तरह के अनुभव दिए। यह मेरे व्यक्तित्व विकास में कहां तक सहायक रही। **सिंगापुर से प्रिंट मीडिया पर रिसर्च करने आए तबरेज नियाजी** के इस सवाल पर मैंने इतना ही कहा, कि इसने मुझे उस दुनिया से अवगत करवाया है, जिसके बारे में मेरी जानकारी शून्य थी। उनसे साक्षात्कार का मौका दिया, जिनकी दुनिया, जिनके सवाल इससे पहले पूरी तरह से मेरे पत्रकार मन में थे ही नहीं। अब शायद मैं अपने समाज और उस दुनिया के अंर्तसंबंधों को बेहतर तरीके से समझ सकूं। जब मैंने मैला ढोने की प्रथा के बारे में जाना तो मुझे विश्वास नहीं हुआ। जब और जानने की कोशिश की, तो पाया कि मनुष्यों के भीतर दूसरे मनुष्यों को कमतर साबित करने की दृढ़ लालसा कुछ भी करवा सकती है। हम किस कदर गिरे हुए लोग हैं, जो दूसरों के स्वाभिमान को इस तरह से कुचलने पर आमादा हैं। हमारी संस्कृति, समाज के विकास के सवाल मुझे झूठे से लगे। अब मैं समझ पाया कि क्यों अछूत जिंदगीभर अपने हीन और समाज से विलग होने की भावना से मुक्त नहीं हो पाता।

अंत में इतना ही कि फैलोशिप ने मुझे मानवीय सरोकारों के लिए संघर्ष करने और लेखन, अनुभव को समृद्ध करने में असीम योगदान दिया है। मुझे विश्वास है कि मैं भविष्य में इस अध्ययन को और अधिक समृद्ध कर सकूंगा और दलितों और वंचितों के लिए काम करते हुए उनकी आवाज को अधिक संवेदना और तर्क के साथ प्रस्तुत कर सकूंगा।

12. संदर्भ सूची

1. गौरव का लोकगीतः समकालीन दलित विष्वास के तीन घटक, लेखक इलिअनर जिलिअट।
2. डा. बाबासाहब अंबेडकर, 1965, राइस एण्ड फॉल अप हिन्दू वूमेन, हैदराबाद, पृ. प्प
3. एपेन्डीक्स।
4. वसंत मून, (संपा.) 1979, डा. बाबासाहेब अंबेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस,
5. वॉल्यूम 1 ,गर्वन्मेंट ऑफ महाराष्ट्र बांबे।
6. वसंत मून (संपादक 1979, डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस,
7. वॉल्यूम 1,गर्वन्मेंट ऑफ महाराष्ट्र, मुंबई)।
8. वसंत मून (संपादक), 1979, डॉ. बाबासाहेत अंबेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस,
9. वॉल्यूम 7, गर्न्वमेंट ऑफ महाराष्ट्र मुंबई ।
10. मोहम्मद अली, 1983, रिलिज्यस ऑफ इस्लाम, एस चंद्रा एंड कंपनी, नई दिल्ली।
11. आषारानी व्होरा, 1983, भारतीय नारी, दषा दिषा, नेषनल पब्लिषिंग हाऊस,दिल्ली।
12. भगवान दास,1998, बाबा साहब भीमराव आंबेडकर और भंगी जातियॉ, लखनऊ, पृ. 7।
13. श्यामलाल,1992द भंगी : अस्विपर कास्ट इट्स सोष्यो इकॅनामिक पोट्रेट्स, बांबे पृ. 11।
14. केएस सिंह, 1998, इंडियंस कम्युनिटी, पृ. 1276–1277।
15. केएस सिंह, 1999, द शेडयूल्ड कास्टस, पृ. 592।
16. श्यामलाल, 1984, भंगी इन ट्रांजिषन, नई दिल्ली पृ. 7।
17. अरूण ठाकुर मोहम्मद खड़स, 1996, नरक सफाई, नई दिल्ली, पृ. 97।
18. माता प्रसाद, 1995, उप्र की दलित जातियों का दस्तावेज, नई दिल्ली, पृ. 27।

परिषिष्ट–1

क्या कहते हैं अखबार

(1) कल्याण की रकम मंत्री–नेताओं पर खर्च

नवभारत (12 अप्रैल 2001) समाचार पत्र के अनुसार सफाईकर्मियों द्वारा गंदे व जरूरी कार्यों को जिस तत्परता से अंजाम दिया जाता है, उस हिसाब से सरकार ने इन्हें कोई सुविधाएं नहीं दीं। हेला बिरादरी के सफाईकामगारों द्वारा मैला ढोने के लिए आज भी सिर व हाथों का उपयोग किया जाता है। सफाईकामगारों के विकास के लिए जो राषि केन्द्र सरकार ने राज्य सरकार को दी थी, उसे मप्र सरकार ने मंत्री व नेताओं की सुख–सुविधाओं पर खर्च किया।

(2) हां मैला ढोया जाता है, बंद करेंगे : नई दुनिया (31 अक्टूबर 2002) के अनुसार उपरोक्त समाचार में केंद्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री डा. सत्यनारायण जाटिया ने इस बात को स्वीकार किया है कि सिर पर मैला ढोने की सामाजिक कुप्रथा का अंत और सफाईकर्मियों का पुर्नवास अभी पूरी तरह नहीं किया जा सका है। इस प्रथा को पूरी तरह समाप्त करने के लिए शुष्क शौचालयों के उपयोग को पूर्ण रूप से बंद किया जाना जरूरी है। हेला बिरादरी में आज भी सिर पर मैला ढोने की कुप्रथा कायम है और अभी तक इनका पुर्नवास नहीं किया गया। सरकार द्वारा शुष्क शौचालयों के समाप्त होने के कारण इस बिरादरी में बेरोजगारी बढ़ी है। अतः इस बिरादरी को सफाई कार्य से मुक्ति दिलाने के लिए आवष्यक है कि इनके पुर्नवास के लिये स्थाई विकल्प तलाश किए जाएं।

(3) दलितों के लिए कौन कहेगा बिसमिल्लाह

इस खबर में लेखक **अनवर अली** (27 फरवरी 1998) ने हिंदुस्तान समाचार पत्र में लिखे आलेख में कहा कि विष्वविख्यात शहनाई वादक उस्ताद बिसमिल्लाह खां दलित मुस्लिम (लालबेगी) समुदाय के सदस्य है। जातिय भेदभाव की जमीन से आगे बढ़कर आसमान की बुलंदियों को छूने वाला उनका व्यक्तित्व उन लाखों दलितों के लिए प्रेरणा है, जो आज तक सम्मान, समानता की जिंदगी के लिए बिसमिल्लाह कहने से भी वंचित है। स्वयं मुस्लिम समुदाय ने उनकी बिरादरी की उपेक्षा करते हुए बिसमिल्लाह खां को अपवाद के रूप में स्वीकार कर यह साबित किया है कि मुस्लिम समुदाय में सामाजिक न्याय का अभाव है। अतः इज्जत और स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए हेला बिरादरी को स्वयं ही सफाई कार्य को छोड़कर अन्य कार्यों मे कौषल हासिल करना होगा।